RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र. /261 / भोपाल / 2015-17 प्रकाशन तिथि: 25 अप्रैल 2015

चकमक

बाल विज्ञान पत्रिका
मई 2015

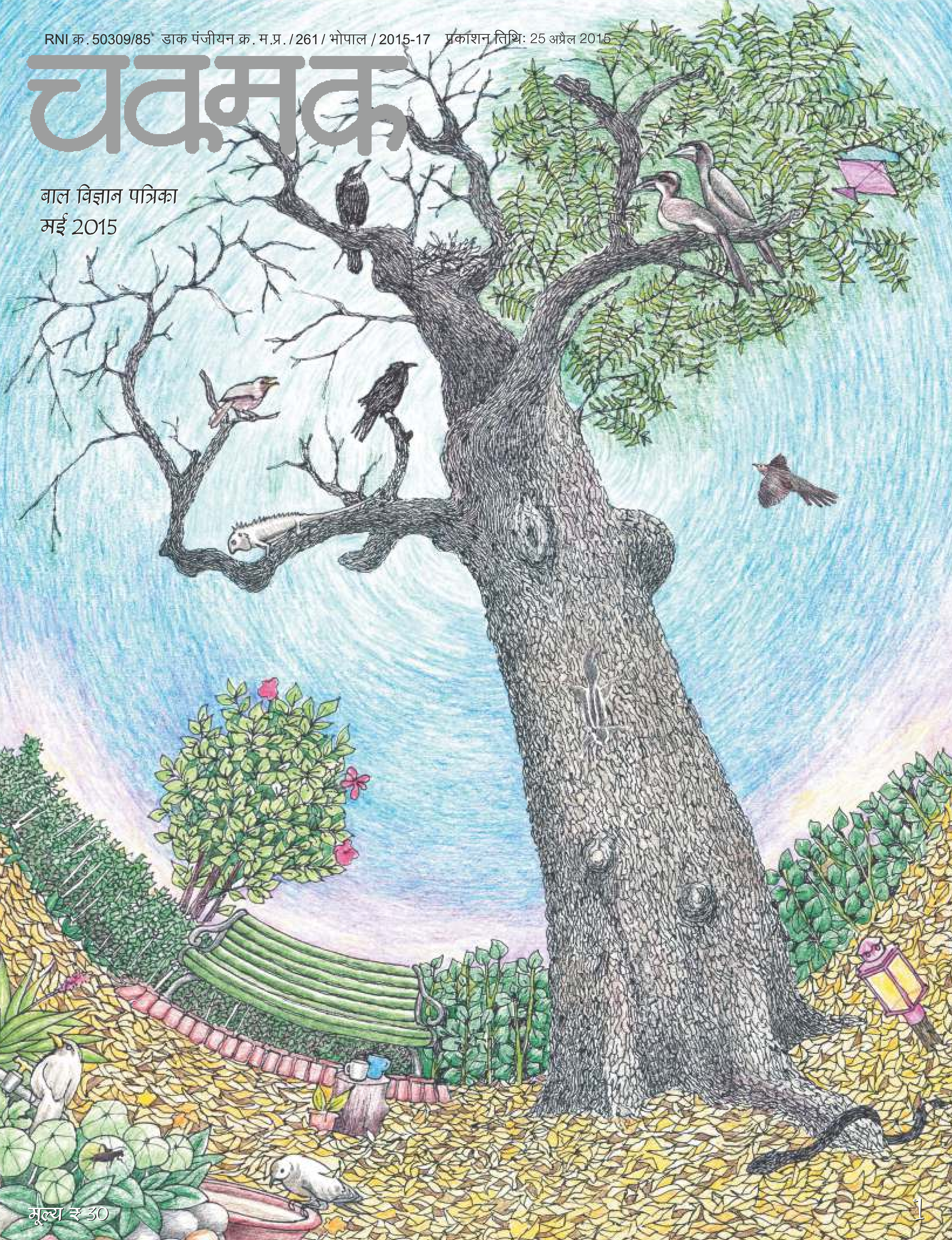

मूल्य ₹ 30

चकमक कविता कार्ड

पढ़ो और फिर चाहो तो अपने दोस्त को
इसी कार्ड के दूसरी तरफ चिट्ठी लिख दो।

कविता कार्ड के इस पहले गुच्छे में हैं बारह कविताएँ।
12 कार्डों की कीमत पच्चीस रुपए है।

इन्हें मँगाने के लिए तुम चकमक के पते पर लिख सकते हो।
या हमें फोन कर सकते हो। या चाहो तो सीधे ऑनलाइन मँगा लो -
http://www.eklavya.in/pitara/chakmak_kavita_cards

बाल विज्ञान पत्रिका

चकमक

अंक 344 मई 2015

इस अंक में

4 बोली रंगोली

6 कहानी पुरानी / मुकेश नौटियाल

8 जहाँ जाएँ दिलो-जान से जाएँ..../ रघुराय, वरुण ग्रोवर

16 मेरे बगीचे का पीर - नीम बाबा / दिलीप चिंचालकर

18 दोस्त / शशिकरण

20, 42 मेरा पन्ना

21 लिखेंगे अम्मा को चिट्ठी / सुशील शुक्ल

22 मगरमच्छ / जसबीर भुल्लर

24 अ अनार का, आ आम का / सुशील जोशी

26 पहली उड़ान / अमित कुमार

29 एक से बढ़कर एक / विवेक मेहता

30 माथापच्ची

31 पाँच खम्बोंवाला गाँव / मुकेश मालवीय

32 अपनी केवल धार / अरुण कमल, रुस्तम, नरेश सक्सेना

34 बोली रंगोली

36 तीन कविताएँ / नरेश सक्सेना

37 फनी पाठशाला / इरफान

40 कुएँ में जाके सोचो, बात बहुत गहरी है.../ इन्द्राणी रॉय

43 चित्रपहेली / कविता तिवारी

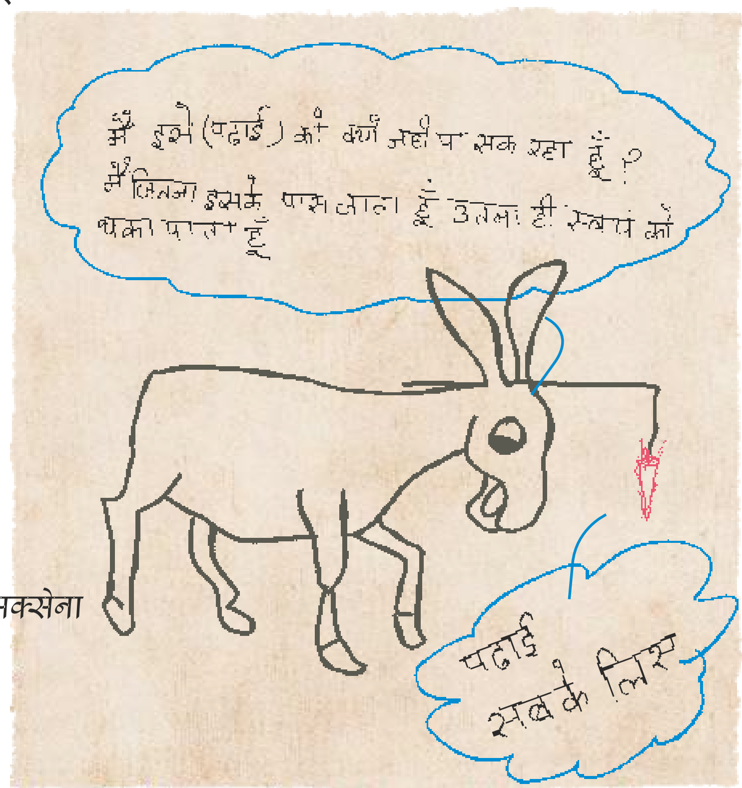

– नीरज सिंह, पाँचवीं, विश्वास विद्यालय, गुड़गाँव

विप्रो एप्लाइंग थॉट इन स्कूल्स के वित्तीय सहयोग से विकसित

आवरण चित्र
दिलीप चिंचालकर

हाशिए के चित्र
हिन्दी ब्रेल

सम्पादन
सुशील शुक्ल
शशि सबलोक

सहायक सम्पादक
कविता तिवारी
मिताली अहीर

विज्ञान सलाहकार
सुशील जोशी

डिज़ाइन
दिलीप चिंचालकर

वितरण
झनकराम साहू

सहयोग
वरुण ग्रोवर
प्रभात
मिहिर
कमलेश यादव

एक प्रति :	30.00	-	व्यक्तिगत
	50.00	-	संस्थागत
वार्षिक :	300.00	-	व्यक्तिगत
	500.00	-	संस्थागत
तीन साल :	800.00	-	व्यक्तिगत
	1350.00	-	संस्थागत
आजीवन :	4000.00	-	व्यक्तिगत
	6000.00	-	संस्थागत

सभी डाक खर्च हम देंगे।
चन्दा (एकलव्य के नाम से बने) मनीऑर्डर/चैक से भेज सकते हैं।
भोपाल के बाहर के चैक में 80.00 रुपए अतिरिक्त जोड़ें।

एकलव्य

ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल, म.प्र. 462 016, फोन: (0755) 4252927, 2550976, 2671017
फैक्स: (0755) 2551108, e mail - chakmak@eklavya.in, e mail - circulation@eklavya.in, www.chakmak.eklavya.in, www.eklavya.in

जेवर खरीदने
ज़मीन रात गई थी
तारे सजा के
आसमान बैठा हुआ था

- गुलज़ार

■ उन्नति अग्रवाल, आठवीं, डीपीएस, कोयम्बटूर

■ राहुल गुप्ता, राष्ट्रीय बालभवन, दिल्ली

जून की कविता सुनोः

बादल ने अब गला साफ किया है
आसन लगा के बैठ गया आसमान में
जब गुनगुनाती आएँगी बूँदें ज़मीन पर
पत्ते बजाके गाएगा मल्हार कान में

हो सकता है बड़े तुम्हें इसके अर्थ बताएँ। उनके अर्थ सुनो-समझो पर चित्र अपने मन का ही बनाओ...। कोशिश करना कि तुम्हारा चित्र हमें 15 मई तक मिल जाएँ। चित्र के साथ अपना पता, कक्षा, फोन नम्बर ज़रूर लिखना।

पता है - चकमक,
एकलव्य,
ई-10, शंकर नगर, शिवाजी नगर,
भोपाल -16
फोन - 09425010115

■ शिवमोहन, तीसरी, सरदार पटेल स्कूल, दिल्ली

दोस्तो,
शुक्रिया, इतनी ज़बर्दस्त भागीदारी के लिए।
और एक से बढ़कर एक चित्रों के लिए।
गुलज़ार साब के पसन्दीदा पाँच चित्र पेश हैं।
कुछ चुनिन्दा चित्र तुम अगले अंकों में मेरा पन्ना में भी देखोगे। अन्य आठ चित्र भी कुछ कम नहीं। इन सभी को उपहार में चकमक की एक साल की सदस्यता/किताबें मिलेंगी।

बोलीरंगोली

■ ओसमा, नीलम समूह, दिगन्तर, जयपुर

चुनिन्दा पाँच चित्र

■ पाँचवीं, डीपीएस, कोयम्बटूर

एक बूढ़ी कहानी

मुकेश नौटियाल

माँ ने पंखुरों से रेत हटाकर एक गड्ढा बनाया, फिर उसमें अण्डे दे दिए। एक-दो नहीं, पूरे पचास-पचपन अण्डे! अण्डे देकर माँ वापस समन्दर में चली गई और फिर नहीं लौटी। उसका काम खत्म हो गया था।

हर सुबह सूरज मुस्तैदी से आता, धरती पर ताप बरसाता और साँझ ढलने पर समन्दर के बीच कहीं उतर जाता। तट पर रेत तपती रही, अण्डों को सेती रही।

और एक दिन रेत में हलचल हुई। और कुछ ही देर बाद एक नन्हे कछुए ने रेत से बाहर गर्दन निकाली। आश्चर्य से इधर-उधर नज़रें दौड़ाईं और फुर्ती से अपने माँसल पंखुरे घसीटता हुआ समन्दर की ओर भागा। फिर दूसरे, तीसरे, चौथे और दर्ज़न भर कछुओं ने ऐसा ही किया।

पहली बार उन्होंने धरती देखी थी, पहली बार आकाश। वहाँ न उनकी माँ थी, न पिता। पता नहीं किसने उनको बताया कि जीना है तो समन्दर की ओर दौड़ो! वे सभी समन्दर की ओर दौड़ने लगे। जहाँ माँ ने अण्डे दिए थे वहाँ से समन्दर कोई सौ मीटर दूर रहा होगा – पर सौ मीटर का फासला भी किसी नवजात कछुए के लिए कम नहीं था! तब तो हरगिज़ नहीं जब बित्ते भर के इस सफर में कई खतरे मौजूद हों।

नन्हे कछुओं की समन्दर के तट पर दौड़ क्या शुरू हुई, आकाश में चीलें मँडराने लगीं। शिकारियों का जत्था आ पहुँचा। शिशु कच्छप उनका निवाला बनने लगे। चीलों को देखकर केकड़े भी सक्रिय हो गए। समन्दर छोड़ तट पर आकर वे नन्हे कछुओं को अपने पंजों में दबोचने लगे। समन्दर का शान्त तट कोलाहल और हलचल से भर गया। शिकारी भूख से बिलबिला रहे थे, शिकार बचाव के लिए छटपटा रहे थे।

चित्र: दिलीप चिंचालकर

आखिरकार युद्ध समाप्त हुआ। कई शिशु कच्छप समन्दर तक पहुँच गए। जितने समन्दर तक पहुँचे उतने ही चीलों और केकड़ों के शिकार हुए। लेकिन एक कछुआ जो न तो समन्दर तक पहुँचा, न ही किसी का शिकार बना, सबसे कमज़ोर कछुआ था। जब माँ ने अण्डे दिए थे तभी एक अण्डा बाकियों से अलग गड्ढे के अकेले कोने पर जा लगा था। ढेर में अण्डों को एक-दूसरे की गर्मी मिलती रही इसलिए सभी एक साथ परिपक्व हुए। अकेला अण्डा आखिर में चटका। उसके अन्दर से निकला शिशु कच्छप बाकियों से कमज़ोर था।

जब उसने अपनी गर्दन रेत से बाहर निकाली तो समन्दर के तट पर कोहराम मचा था। उसने अपने सहोदरों को चीलों की चोंच में छटपटाते देखा, केकड़ों की गिरफ्त में जाते देखा। वो समझ गया, केवल दौड़ना काफी नहीं। कब दौड़ना है – यह ज़्यादा ज़रूरी है।

जब माहौल एकदम शान्त हो गया तब उसने अपने खुद को रेत के बाहर निकाला और धीरे-धीरे समन्दर की ओर बढ़ने लगा। समन्दर के करीब पहुँचने के बावजूद वह दूर था। कमज़ोरी के चलते वह हाँफने लगा था। जब लगा कि दम निकल जाएगा तब वह सुस्ताने बैठ गया। कुछ देर आराम करने के बाद उसने दोबारा डग भरने शुरू किए और अन्ततः वह समन्दर के गीले तट तक पहुँच गया। सूखी रेत पर दौड़ना, फिसलना, लुढ़कना आसान था लेकिन गीली रेत पर चलना खासा मुश्किल होता है। उसने इन्तज़ार करना बेहतर समझा। वह जहाँ था वहीं ठहर गया।

सूरज का लाल गोला समन्दर में उतरने लगा। ढलती साँझ के साथ लहरें विकराल होने लगीं। ज्वार बढ़ने के साथ लहरों का विस्तार भी बढ़ने लगा।

और आखिरकार उसका इन्तज़ार सफल रहा। एक लहर आई और उसको बहाकर समन्दर में ले गई।

यह तीन सौ साल पुरानी बात है।

समन्दर के तट पर जो बूढ़ा कछुआ धूप सेंकता दिखाई दे रहा है यह वही कछुआ है जो उस दिन आखिर में समन्दर तक पहुँचा था।

जहाँ जाएँ
दिलो-जान से जाएँ....

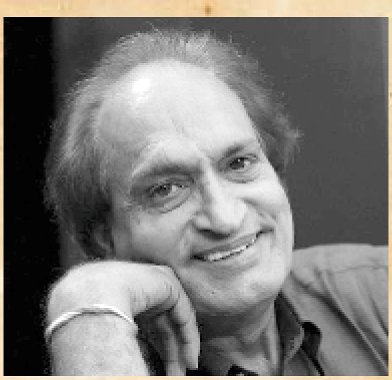

इंटरव्यू की श्रृंखला में गीतकार वरुण ग्रोवर ने खासतौर पर चकमक के लिए मशहूर फोटोग्राफर रघुराय से बातचीत की है। यह बातचीत ज्यों की त्यों यहाँ शाया कर रहे हैं।

वरुण ग्रोवरः हमारी पत्रिका बच्चों की है। इस श्रृंखला में पहले हमने गुलज़ार साहब का और विशाल भारद्वाज का इंटरव्यू किया है। हमारा फोकस रहता है कि हम पुरानी स्मृतियों में जाएँ, बचपन में जाएँ और वहाँ से बात शुरू करें। तो सबसे पहली आपकी याद क्या है, सबसे पुरानी याद?

रघुरायः ऐसा है कि बचपन से मेरी याददाश्त अच्छी नहीं है। और यह अच्छी ही बात है कि मुझे बहुत-सी बातें याद ही नहीं रहतीं। वैसे पुरानी बातों को याद करके दिल से लगाए रखें यह कोई मज़ेदार बात तो है नहीं! हाँ, यह ज़रूर है कि कोई अहम बात होती है ज़िन्दगी की तो वो याद रह ही जाती है। पर ज़्यादातर चीज़ें मुझे याद नहीं रहतीं। मुझे जो पुरानी बात याद है वो 1947 के पार्टीशन (विभाजन) की है। उन दिनों रात में हिन्दुओं के घरों में आग लगा दी जाती थी। हमारा घर थोड़ा ऊँचा था और एक दूसरी गली से भी खुलता था। मुझे याद है उस दिन आधी रात में कैसे हमारे अड़ोसी-पड़ोसी हमारे घर आ गए थे। वहाँ से आधी रात को हमारा परिवार और सब भागे थे। बस ये थोड़ी-सी याद बाकी है।

(वो बोले, अमित! वो मेरी झाँगवाली तस्वीर भी निकाल लेना।)

वरुणः झाँग... मेरे नानकेवाले भी झाँग से आए हैं। वानकी गाँव था वहाँ। अच्छा, तो उसके बाद फिर आप जब हिन्दुस्तान आए तो वहाँ बचपन के दोस्त...

रघुरायः पार्टीशन के बाद हम कैम्प में ठहरे थे। मेरी माँ बताती थीं कि वहाँ दाल-चावल मिलता था या दाल-रोटी मिलती थी। मुझे ये दोनों ही पसन्द नहीं थीं। मैं तब बच्चा था। मन का खाने को नहीं मिलता तो रोता रहता था। तो जो थोड़ा-सा दूध और चीनी मिलती थी उसमें रोटी तोड़के मुझे खिलाते थे।

(रघुराय और वरुण दोनों हँस दिए।)

वरुणः तो वहाँ से सीधे दिल्ली आए थे आप लोग?

रघुरायः वहाँ से जालन्धर आए थे। उस वक्त सरकार कोशिश कर रही थी कि जो लोग सरकार से जुड़ें उन्हें तुरन्त अपनी-अपनी पसन्द की पोस्टिंग दे दी जाए। मेरे पिता सिंचाई विभाग में थे – उस समय तो सरकार का ही था सब। ऐसे प्राइवेट तो होता ही नहीं था। तो 1947 के बाद आते ही उनको दिल्ली में सिंचाई विभाग में नौकरी मिल गई।

जो पहली तस्वीर खींची वो बेबी की थी – एक नन्हे-से प्यारे-से गधे के बच्चे की। लन्दन टाइम्स ने मेरे नाम के साथ उसे बहुत बड़ा छापा।

वरुणः अच्छा। आप बचपन में शर्मीले थे कि लोगों से घुलने-मिलनेवाले?

रघुरायः मुझे नेचर (प्रकृति) से प्यार था लेकिन जिनसे मेरी दोस्ती है, जो मेरे घर के लोग थे और जो कोई मेरा दोस्त होता था, मैं उनसे खुले दिल का था लेकिन ज़्यादा लोगों से मिलना और ज़्यादा दोस्तियाँ मुझे पसन्द नहीं थीं और आज भी नहीं है।

वरुणः भाई-बहन?

रघुरायः भाई-बहन... मेरी छह बहनें थीं। और हम चार भाई। क्योंकि मेरे पिता का फैमली प्लानिंग (परिवार नियोजन) वालों से झगड़ा हो गया था।

वरुणः फिर तो घर में ही बहुत रौनक रही होगी।

रघुरायः बहुत रौनक थी। उस ज़माने में तो अड़ोस-पड़ोस में भी बड़ा आना-जाना होता था न! अब तो किसी अड़ोस-पड़ोस से लेना-देना नहीं। यह बड़ी खराब बात है।

वरुणः बचपन में क्या सोचा था बड़ा होकर क्या बनेंगे?

रघुरायः (हँसते हुए) शेर बनने का सोचा था...। बचपन में जब स्कूल में होता था और स्कूल खत्म होने जा रहा था तो मैं सोचता था बड़ा होकर संगीतकार बनूँगा। फिर बीच में एक-दो दोस्त ऐसे मिल गए जिन्हें संगीत से प्यार था और फिल्में भी पसन्द थीं।

फिल्मों की बात करते थे तो लगता था कि चलो फिल्में बनाएँगे। कुछ पता नहीं था कि फिल्म क्या होती है। तो बनना संगीतकार था पर फिर पिताजी ने कहा कि नहीं! क्योंकि वे सिंचाई विभाग में सुपरिटेंडेंट इंजीनियर थे और उनके बॉस जो थे वो चीफ इंजीनियर थे। मेरे पिता प्रशासनिक विभाग के मुखिया थे पर चीफ इंजीनियर बड़े बॉस थे। तो पिताजी को यह नागवार गुज़रता कि भई हमसे भी कोई सीनियर बन्दा ऊँचे ओहदे पे है। तो उन्होंने कहा कि हम तुझे इंजीनियर बनाएँगे। इसलिए मुझे इंजीनियरिंग करनी पड़ी। उन्हें लगता था कि इंजीनियरिंग करके ये सीधा सीनियर पोस्ट पे लगेगा और फिर कुछ सालों में चीफ इंजीनियर बन जाएगा। (हँसते हुए)

वरुणः तो आपने इंजीनियरिंग की फिर?

रघुरायः हाँ

वरुणः अच्छा!

रघुरायः फिर मैंने सरकार के साथ एक साल नौकरी की। पर मैं बोर हो गया और अपने बड़े भाई साहब के पास आके रहा... पॉल साहब के पास, जो फोटोग्राफर थे। तो मैंने भी ऐसे ही शरारत-शरारत में फोटो खींचनी शुरू कर दी। जो पहली तस्वीर खींची वो बेबी की थी – एक नन्हे-से प्यारे-से गधे के बच्चे की। मेरे भाई ने उसे *लन्दन टाइम्स* अखबार में भेजा। और उन्होंने मेरे नाम के साथ उसे बहुत बड़ा छापा। तो मैंने सोचा चलो यही धन्धा करके देख लेते हैं।

वरुणः पहला कैमरा कौन-सा था याद है?

रघुरायः पहला कैमरा तो अल्फा का छोटा-सा कैमरा था जो उन्होंने लोड करके दिया था। उसके बाद मैं निकोन यूज़ करता रहा।

वरुणः अच्छा! भाई आपके दिल्ली में प्रोफेशनल फोटोग्राफर थे?

रघुरायः थे और हैं। मुझसे 11 साल बड़े हैं। वे *इंडियन एक्सप्रेस* के चीफ फोटोग्राफर थे। जब मैंने शुरू किया तो मैंने *स्टेट्समैन* ज्वाइन किया। फिर उसका चीफ फोटोग्राफर बन गया। तो मेरे भाई *इंडियन एक्सप्रेस* के चीफ फोटोग्राफर थे, मैं *स्टेट्समैन* का था और हमारे एक मित्र थे किशोर वो *हिन्दुस्तान टाइम्स* के

थे। हम तीनों का आपस में यूँ होता था कि कौन अच्छी तस्वीर लेगा... इसमें बड़ा मज़ा आता था।

वरुणः बचपन में ऐसी कोई चीज़ हुई जिसका लिंक फोटोग्राफी तक ले आया।

रघुरायः नहीं...बिलकुल नहीं। कोई लेना-देना नहीं था। मुझे नेचर से प्यार था। मुझे ज़िन्दगी से प्यार था। तो कैमरा जब हाथ में आया और फोटो छपनी शुरू हुई तो अच्छा लगा। और दूसरी बात यह थी कि मैंने देखा कि मैं सहज ही (instinctively) कुछ अच्छी चीज़ों को पहचान पाता था। तो रचनात्मकता (creativity) जो होती है वो सहज-बोध (instinct) से ज़्यादा अच्छी होती है, पर सोच से नहीं। सोच रचनात्मकता का रास्ता रोक के खड़ी होती है। इसलिए कहते हैं कि किसी चीज़ के लिए हमारी प्रतिक्रिया छोटे बच्चों जैसी ताज़ा व कोमल होनी चाहिए। बच्चे कैसे हर चीज़ को देख के अपनी भाषा में अपनी तरह से बात करते हैं वो काबिलेतारीफ है। तो ज़िन्दगी देखकर, प्रकृति देखकर उसी सहजता से संवाद करना कि उसमें ताज़गी हो ज़िन्दगी देखने की। बच्चों के ज़ेहन में भूसा नहीं भरा हुआ है समझदारी का। समझदारी भी भूसा हो जाती है उसके बाद। अगर आपको धन्धा करना है, दुनियादारी करनी है तब तो सोच-समझ के काम करना पड़ेगा। पर रचनात्मकता में तो पागलपन चाहिए ही।

बच्चे कैसे हर चीज़ को देख के अपनी भाषा में अपनी तरह से बात करते हैं वो काबिलेतारीफ है।

वरुणः मेरे ख्याल से आपने 60 के दशक में ... 1965 के आसपास फोटोग्राफी शुरू की। तो उस ज़माने में कुछ अजीब-सा प्रोफेशन नहीं होगा? आज तो सबके हाथ में कैमरा है।

रघुरायः उस ज़माने में बहुत कम फोटोग्राफर थे। और उस ज़माने में अच्छे फोटोग्राफर भी बहुत कम थे। ज़्यादातर जो थे वो पिक्टोरिअल पिक्चर बनाते थे। एक डूबते सूरज की बना ली। एक बूढ़े आदमी की बना ली, बूढ़ी औरत की बना ली बच्चे का क्लोज़अप बना लिया। सुन्दर-सी लड़की की तस्वीर बना ली और बड़े खुश हो गए कि देखोजी क्लोज़अप खींच के ले आए! उस ज़माने में फोटोग्राफी बड़ी मामूली चीज़ मानी जाती थी। जब मैंने इंजीनियरिंग के बाद फोटो खींचनी शुरू की तो मेरे पिता बड़े नाराज़ हुए कि मैंने तो सोचा था बेटे को चीफ इंजीनियर बनाएँगे। एक दिन उनसे किसी ने पूछा कि आपके कितने बेटे हैं? तो कहते हैं मेरे बेटे तो चार थे पर दो फोटोग्राफर हो गए। लेकिन फिर जब मैं काम करने लगा, मेरा काम छपने लगा, भाई का काम छपने लगा, लोग मिलने आने लगे लगे, फिर 71-72 में पहली दफे एक फोटोग्राफर को पद्मश्री मिला...फिर तो वे कहते थे वाह भई वाह! (हँसते हुए)

जब ज़िन्दगी साफ-साफ दर्शन देने लगती है और उसको जब आप पकड़ते हैं तो वो है रचनात्मकता।

वरुणः अच्छा! तो मैग्नम और ये सारे बड़े-बड़े नाम आपके साथ जुड़े और आप उनके साथ जुड़े तो वे खुश हो गए होंगे।

रघुरायः हाँ, फिर तो उन्होंने सोचा कि क्या बात है हमारे बेटे तो कमाल के हैं! वो तो है ही। लेकिन देखिए न आज कितने सारे प्रोफेशन आ गए हैं। जैसा मैंने आपको बताया था कि उस ज़माने में नौकरी सरकारी ही होती थी। कम्पनियों में तो कोई-कोई ही काम करता था। और लोग कहते थे पागल है इसका बेटा तो कम्पनी में काम करता है, सरकारी नौकरी भी नहीं है इसके पास। आजकल सरकारी नौकरी कोई आसानी से लेना नहीं चाहता। क्योंकि इतने सारे प्रोफेशन आ गए हैं जिनमें आप कामयाबी की बुलन्दियाँ छू सकते हैं।

वरुणः एक थोड़ा अमूर्त्त-सा सवाल है और वो ये कि फोटोग्राफी में क्रिएशन (कुछ नया रचने) का क्या मतलब है? जैसे कहानी में तो होता है कि कुछ लिखा, कुछ नया क्रिएट किया।

रघुरायः क्या लिख दिया और क्या नया क्रिएट कर दिया आपने कहानी में? ज़िन्दगी देखी, उसको समझा, उसकी बारीकियों को समझा और उनको लिखा। तभी वो बनी न! हम भी उसी तरह से उन जज़्बातों (emotions) और ऊर्जा (energy) को देखते हैं, उसको पकड़ते हैं। इसलिए तो मैं कह रहा हूँ कि बिना इमोशन के खींची तस्वीरें – बूढ़ी औरत, लड़की का क्लोज़ अप, किसी प्यारे-से बच्चे की, डूबते सूरज की तस्वीर – सब कचरा है।

तो फोटोग्राफी में भी बहुत गहरापन है। जैसे एक लेखक भावनाओं और ऊर्जा के एहसास को सहेजता है उसी तरह रचनात्मक पलों में आप जब किसी की तस्वीर बनाते हैं या किसी स्थिति को पकड़ते हैं तो आप उसका मर्म पकड़ते हैं। असल बात क्या है उसके भीतर यह देखते हैं।

आप एक बात तो जानते हैं न! सब कहते हैं – भगवान के दर्शन करेंगे, भगवान के दर्शन करेंगे। भगवान के दर्शन हुए हैं किसी को कभी! नहीं हुए हैं न! आपका कोई जाननेवाला है जिसको हुए हैं? ज़िन्दगी के दर्शन होते हैं। है न। तो जब ज़िन्दगी साफ-साफ दर्शन देने लगती है और उसको जब आप पकड़ते हैं तो वो है रचनात्मकता। रचनात्मकता इज़हार करना है। लोगों को गलतफहमी है कि सौन्दर्य... सुन्दर बनाना, सुन्दरता पकड़ना, उसे कैद करना रचनात्मकता नहीं है। यह गलत बात है। सौन्दर्य जो है...जैसा मैंने आपको बताया कि एक प्यारा-सा बच्चा सुन्दर तो है ही। सुन्दर-सी लड़की तो सुन्दर है ही। हिमालय सुन्दर है ही। आपने फोटो खींच ली तो आपने सौन्दर्य को नहीं

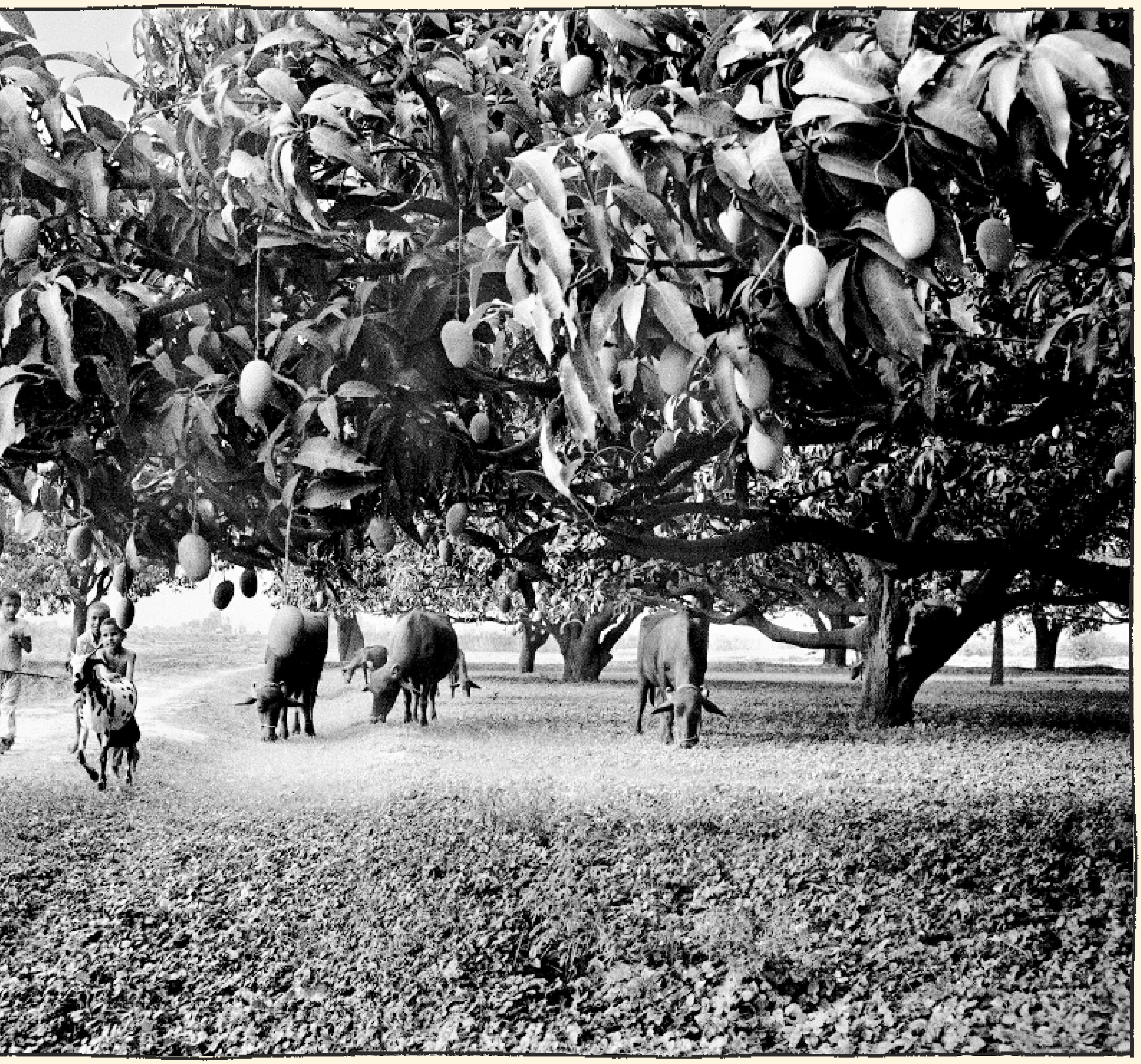

पकड़ा। आपने एक सुन्दर चीज़ की तस्वीर खींची है। लेकिन जब उनकी रूह, उनकी ऊर्जा, उनके जज़्बात भी खिंचे आएँ तब असल बात बनती है। हिमालय अपने आप में अद्भुत है! पर जब हवाएँ चलें, बादल आएँ तब आपने जो मूड पकड़ा वो क्रिएटिविटी है।

आपने एक लाजवाब दृश्य देखा। उसने आपकी धड़कनें छीन लीं। उसी समय आपने क्लिक कर दिया। तो वो जो आपकी धड़कन थी वो उसमें आ गई।

मानो मुझे किसी की तस्वीर बनानी है। वो चिकना-चुपड़ा सुन्दर-सा है...यह तस्वीर नहीं है। उस इंसान के एहसास क्या हैं, उसका व्यक्तित्व क्या है... कि कोई भी उसको न जानता हो वो देखे और कहे अरे, यह तो एकदम सच लगती है। ये जो भी है सच है। सच दिखाई देता है।

वरुणः अच्छा! ब्लैक एंड वाइट और कलर में आपको फर्क लगा कुछ...

रघुरायः देखिए ऐसा है ब्लैक एंड वाइट और कलर का फर्क ये है कि रंग को हम एक पेंटर की तरह नहीं देखते। पेंटर तो आसमान को भी हरा कर दे तो कोई नहीं कहेगा कि भई आसमान तो हरा नहीं होता। भई वो तो कलाकार है, उसकी कल्पनाशीलता है। पर हम तो वास्तविकता की तस्वीर खींचते हैं। किसी स्थिति में अगर रंगों में आपस में तालमेल नहीं है, रिदम नहीं है तो वो तस्वीर किसी काम की नहीं।...जैसे दुख के समय लोगों ने रंग-बिरंगे कपड़े पहने हैं और आप उसकी तस्वीर खींचते हैं तो वह एकदम बेअसर होगी। आप जब उसे ब्लैक एंड वाइट करेंगे तो रंगों का शोर चला जाएगा। उसमें गम्भीरता आ जाएगी। हर तस्वीर कलर में ही अच्छी लगेगी, ब्लैक एंड वाइट में नहीं – ऐसा कोई नियम नहीं है। समय-समय की बात है, ज़रूरत की बात है।

वरुणः लेकिन आपकी पसन्दगी क्या है? किसमें आपको ज़्यादा मज़ा आता है?

रघुरायः ऐसा है कि आजकल हरेक के पास कैमरा, हरेक के पास मोबाइल है। रंग-बिरंगी तस्वीरें आती रहती हैं। आजकल रंगों का इतना अतिरेक हो गया कि अब मुझे रंगों से तकलीफ होने लग गई है। इसलिए मैं एक तरह से बदला चुकाने की नीयत से सबको ब्लैक एंड वाइट कर देता हूँ। पर कलर की अपनी बात है और कई स्थितियों में ब्लैक एंड वाइट की अपनी है।

वरुणः आपकी फोटोग्राफी जो हमने देखी है वो दो तरह की है। एक, किन्हीं बेहद खास पलों की तस्वीरें और दूसरा, आम ज़िन्दगी की तस्वीरें। इन दोनों में से आपको किसमें ज़्यादा प्रयास करना पड़ता है और किसमें ज़्यादा मज़ा आता है?

रघुरायः देखिए खास पलों/घटनाओं की तस्वीरों के लिए आपका सही जगह पर सही समय में होना ज़रूरी है और काम की आज़ादी भी। और आम ज़िन्दगी की तस्वीरें तो वे हैं जिन्हें 90 फीसदी हिन्दुस्तान जीता है। बड़ा सच तो वो ही है। तो उनमें रचनात्मक पलों को पकड़ पाना ज़्यादा बड़ी चुनौती है। मज़ा भी इसी में ज़्यादा है। पर मैं तो कहूँगा कि दोनों की अपनी-अपनी खासियतें हैं। तस्वीरें कुछ ही पलों को दिखाती हैं। बाकी समय में तो रोज़मर्रा की जैसी ज़िन्दगी चलती है उसमें जादू ढूँढना चुनौती है।

वरुणः और आपने बतौर एक फोटो जर्नलिस्ट मेरे ख्याल से चार दशक तो कवर किए हैं। कोई एक दशक है जो ज़्यादा घटनाओं से भरा था आपकी नज़र में?

रघुरायः हाँ, 80 का दशक जब इन्दिरा गांधी का कत्ल हुआ था। जब भोपाल गैस त्रासदी हुई थी। फिर राजीव गांधी और सारा कुछ हुआ। होने को तो अब भी हो रहा है। कोई साल ऐसा नहीं होता जब कुछ नहीं हुआ होता। जब ज़रा ज़्यादा बुरा हो जाता है तो हम सोचते हैं कि....वरना ज़िन्दगी तो फिर भी जी ही जाती है न।

वरुणः एक फोटोग्राफर के लिए किसी फोटो की जो अहमियत होती है उसमें नॉस्टैलजिया (बीते वक्त की याद) का कितना योगदान होता है? कई फोटो हैं जो उस समय बहुत महान नहीं लगतीं पर 20 साल बाद वही.....

रघुरायः नहीं देखिए ऐसा नहीं है। आपने एक दृश्य देखा और वो आपको इतना लाजवाब लगा कि उसने आपकी धड़कनें छीन लीं। ये तो आप समझते हैं। वो धड़कन जब आपकी छीनी उसने, उसी समय आपने क्लिक कर दिया। तो वो जो आपकी धड़कन थी वो उसमें आ गई। तो जब तस्वीर में धड़कन आ जाती है, करंट आ जाता है, ऊर्जा आ जाती है तो वो ज़िन्दा लगने लगती है। देखिए काम वही होता है जो सालों साल बाद भी ज़िन्दा रहे।

वरुणः क्या कोई ऐसी फोटो है जो आपको उस समय अच्छी नहीं लगी पर....

रघुरायः नहीं ऐसा नहीं होता है। देखिए आजकल आर्काइवल (पुरानी) तस्वीरों की बड़ी बातें हो रही हैं। जो 50 साल पहले किसी ने खींची या 60 साल पहले खींची या 80 साल पहले खींची। इससे क्या होता है? उसमें धड़कन है तो है। नहीं है तो वो महज़ रिकॉर्ड है। सरदार पटेल अपने घर में बैठे थे या महात्मा से बात कर रहे थे... अब महात्मा से बात कर रहे थे तो एक तो हो गया कि दोनों बैठे हैं। उन्होंने कहा कि भाई खींच लो। और आप खींच के चले आए। एक है वो जब बड़ी गहन बातचीत में हैं, कोई योजना बना रहे हैं शायद। उस वक्त जब आप खींचते हैं तो आपको पता होता है कि इसमें करंट है। आप इतने भी बुद्धू नहीं होते कि 20 साल के बाद आपको आपकी तस्वीर समझ आए।

तो यह दिक्कत आजकल हिन्दुस्तान में दो तरह की हो गई है। एक तो आर्काइवल काम है 50 साल पुरानी तस्वीर है। दूसरी है फाइन आर्ट फोटोग्राफी। इसमें चीज़ों की भौतिकता (physicality) यानी उनके टेक्सचर, रंग, फॉर्म आदि पर ही ध्यान दिया जाता है। ऐसी फोटोग्राफी हम 70 के दशक में भी देखते थे और कहते थे कि क्या बीमारी है ये!

वरुणः कोई ऐसा शहर है जहाँ आप बार-बार जाते हैं? कोई ऐसा शहर खास पसन्द है फोटोग्राफी के लिहाज़ से?

रघुरायः देखिए आप किसी भी शहर में जाइए, आपका घर-शहर जो आपके अन्दर का शहर है उसे लेके जाएँ तो किसी भी शहर में रौनक है। मतलब आप प्यार से, दिलो-जान से कहीं भी जाएँ तो बात है।

वरुणः आपकी पसन्दीदा कुछ तस्वीरें कोई तीन-चार...

रघुरायः ऐसा नहीं होता। ऐसा नहीं होता।

वरुणः आपकी इतनी सारी किताबें आई हैं उनमें से कोई किताब जो आपको सबसे ज़्यादा पसन्द हो। कोई एक किताब...

रघुरायः ऐसा नहीं होता। सब में, हर किताब में कुछ न कुछ कोई न कोई बात है। इसीलिए तो वो तैयार की गई हैं। ठीक है न! अब आप ये कहें कि देखिए ये इमारत बड़ी अच्छी है इसमें सबसे ज़रूरी ईंट कौन-सी लगी है? मैं कहूँगा कि यह जो इमारत है ये कई सारे अनुभवों से मिलके बनी है। छोटे-बड़े, अच्छे-बुरे, भयानक-लाजवाब और इसीलिए ये जो ढाँचा, ये जो इमारत है उसमें अनुभवों की, तजुर्बों की गहनता है। इन सबकी वजह से वो इमारत है। ठीक है न?

सभी तस्वीरें: रघुराय

—संजू, तीसरी, बैरागढ़, हरदा, म.प्र.

एक कबूतर की मौत

मैंने आज एक कबूतर की दर्दनाक मौत के बारे में पढ़ा। वह अपने दस कबूतर साथियों के साथ एक घर की छत पर बैठा हुआ था। थोड़ी देर बाद अचानक एक बाज़ आया। और उन कबूतरों को छत से हटा दिया। बाकी कबूतरों ने झुण्ड बना लिया था लेकिन एक कबूतर रह गया था। वह एक घर के बगीचे में जा पहुँचा। वहीं पर एक कुत्ता रहता था। उस कुत्ते ने उस कबूतर का सिर खा लिया और बाकी का माँस एक नदी के किनारे छोड़ दिया। वह सच में एक दर्दनाक मौत थी।

— कनव शर्मा, चौथी,
प्रेसिडियम स्कूल, दिल्ली

मेरे बगीचे का पीर
नीम बाबा

दिलीप चिंचालकर

चैत का महीना है और भोर के पहले का अन्धेरा है। मेरे बगीचे में रहनेवाली बुलबुल और श्यामा ने अभी चहकना शुरू नहीं किया है। दिन गर्म होने लगे हैं लेकिन अभी हवा में ठण्डक है। उसी का आनन्द लेने के लिए सुबह की मीठी नींद छोड़कर बगिया में आ बैठा हूँ। घनी शान्ति पसरी हुई है। रात का जादू अभी खत्म नहीं हुआ है। मैं नीम के फूलों को झरते हुए सुन सकता हूँ। बड़े महीन फूल हैं और वैसी ही उनकी महक और पत्तों पर गिरने की आहट है। ऐसे में चुपचाप बैठना मेरी सुबह की प्रार्थना है।

नीम का पेड़। यह हर मौसम का पेड़ है। इसलिए नहीं कि मैं इसे हर मौसम में घर के अहाते में खड़ा देख सकता हूँ। बल्कि इसलिए कि साल के हर दिन बगीचे में रहनेवाले हम प्राणियों के लिए यह कुछ न कुछ लिए होता है। अभी इसकी हर पतली टहनी की हर छोटी डण्डी की हर बारीक काड़ी पर ताम्बई रंग से हरी होती पत्तियाँ हैं और हलके सफेद फूलों की लड़ियाँ हैं। कभी देखे हैं नीम के फूल? दादी इनसे मीठा शर्बत बनाती थीं, ताऊजी डण्ठलों से दातून करते थे, मैं कड़वी पत्तियों को चबाता हूँ। अपना-अपना स्वभाव है।

घर बनाने के लिए ज़मीन का यह टुकड़ा पिताजी ने इस नीम की साझेदारी में लिया था। आपसी समझ थी कि इधर नीचे हम रहेंगे। उधर ऊपर तुम अपने कुनबे के साथ यानी झिंगुर, गिलहरियों, गिरगिट वगैरह के साथ बने रहना। घर की नींव में ईंट-पत्थर डालते समय पिताजी ने नीम की जड़ों को बचाए रखा। बदले में नीम ने घर की कवेलूवाली छत पर बाँहें फैलाकर छाया कर दी। जब जेठ-बैसाख में धूप तेज़ होती है तो नीम पत्तियों का घना मण्डप तान देता है और पूस-माघ के जाड़े में सारी पत्तियाँ उतारकर आँगन को धूप से भर देता है। दोनों ही मौसम में पिताजी अपना काफी समय नीम तले इस धूप-छाँव में ही बिताते थे... और अब मैं भी।

बारिश के दिनों में जब अचानक तेज़ बौछार शुरू होती है तो नीम का शामियाना उसे कुछ देर तक ऊपर ही रोके रखता है। हमें भाग-दौड़कर नीचे फैली वस्तुएँ हटाने के लिए कुछ समय मिल जाता है। लेकिन बारिश थम जाने के बाद भी आते-जाते हम पर बूँदें छींटता रहता है। मेरी बिटिया बचपन में यही समझती थी कि सारी बारिश हमारे नीम के पेड़ में से ही होती है। हवा भी नीम की पत्तियाँ हिलने से चलती है। स्कूल में उसके सहपाठी इसका मज़ाक बनाते।

एक गर्मियों की बात है। ढलती दुपहरी थी और तोते किलकारियाँ भरते हुए कच्ची निम्बोलियाँ टपाटप गिरा रहे थे। पेड़ के नीचे खटिया पर पसरा मैं ऊपर देख रहा था। इस कोण से हम पेड़ के भीतर कम ही झाँकते हैं। मुझे अचानक नीम का वह रूप दिखाई दिया जैसा शायद कभी अर्जुन को कृष्ण का दिखाई दिया होगा – विश्वरूप। तने से फुनगी तक ज़मीन से आसमान तक फैला नीम। बड़ी-छोटी शाखाएँ, टहनियाँ, पत्तियाँ। उनमें समाई उसके कीड़े-मकौड़ों-तितलियों-मधुमक्खियों-पक्षियों की दुनिया जो उसके सामने ज़मीन पर चित गिरने से मुझे दिखी।

हमारा नीम एक काकम्बीर है। अर्थात पेड़ जिस पर कौवे घोंसला बनाते हैं। जहाँ कौवे का घोंसला है वहाँ अण्डे देने के मौसम में कोयल का आना-जाना भी होता है। इसकी पत्तियों में छुपे बैठे नर या मादा कोयल और महोका मुहल्ले के दूसरे किसी पेड़ पर बैठे अपने साथी से लगातार कुहककर बातचीत का चक्कर चलाते हैं। कभी-कभी धनेष आकर सबसे ऊपरवाली शाख पर बैठ जाते हैं। तब मैना और सात भाई जैसे छुटभैये खूब शोर मचाते हैं। गिलहरियाँ भी चीख-चीखकर पेड़ पर अपना कब्ज़ा जताती हैं। यह जानना दिलचस्प होगा कि नीम को कौन-से प्राणी प्रिय हैं – ये शोर-शराबी, बर्तन पर हथौड़ी की ठुक-ठुक की आवाज़ करनेवाला ठठेरा (बार्बेट) या गूँगी फाख्ता?

मेरे परिवार का बुज़ुर्ग यह नीम पता नहीं यहाँ कब से है! शायद दो सौ वर्षों से। इसके तने का घेरा नापने के लिए मेरी बेटी, उसकी माँ और मुझे, तीनों को हाथ पकड़कर इससे लिपटना पड़ता है। यह कल्पना मुझे रोमांचित करती है कि जुलाई 1857 के गदर में जब शहर का गोरा शासक कर्नल डूरेण्ड अपने लवाज़मे के साथ भागा तब हमारे नीम ने उसकी फज़ीहत देखी थी।

एक बार इसकी छाल को दीमक लग गई। मुझे चिन्ता हुई। मैं उसे रोज़ खुरचता मगर वह रात भर में ऊपर चढ़ जाती। फिर ध्यान आया कि उसके जीवन में कई बार दीमक ने हमला किया होगा और हर बार पेड़ ने उसे झटकार दिया होगा। इस बार भी ऐसा ही हुआ। नीम ने कई पतझड़ देखे थे। इसके तले मनो-मन पत्तियों की खाद बनी थी। परन्तु अब हम इसकी वर्षगाँठ का उत्सव मनाते हैं।

पतझड़ में झरनेवाली हरी-पीली पत्तियों को बुहारकर पेड़ के गिर्द जमाते जाते हैं। कुछ ही दिनों में पत्तियों का गलीचा मोटा गद्दा बन जाता है। पहले इसका रंग पीला, फिर भूरा और कत्थई हो जाता है। पहले जो नर्म था कुरकुरा हो जाता है। कलाकार तबियतवाले मित्र इस कलाकृति पर चाय-गपशप के लिए आते हैं। पड़ोस के बच्चे इसमें खेलते हैं। मेरी दुमवाली अल्सेशियन बेटियाँ इसमें लोट लगाती हैं। सात भाई (बैबलर) तो सारा दिन कीड़ों की खोज में पत्तियाँ खँगालती रहती हैं। कुछ निरीह सरिसृप भी इसमें दुबकने का सुख पा लेते हैं। कुछ हफ्तों तक पतझर और मौसमी फूलों की बहार, दोनों साथ-साथ बगीचे को सँवारते हैं।

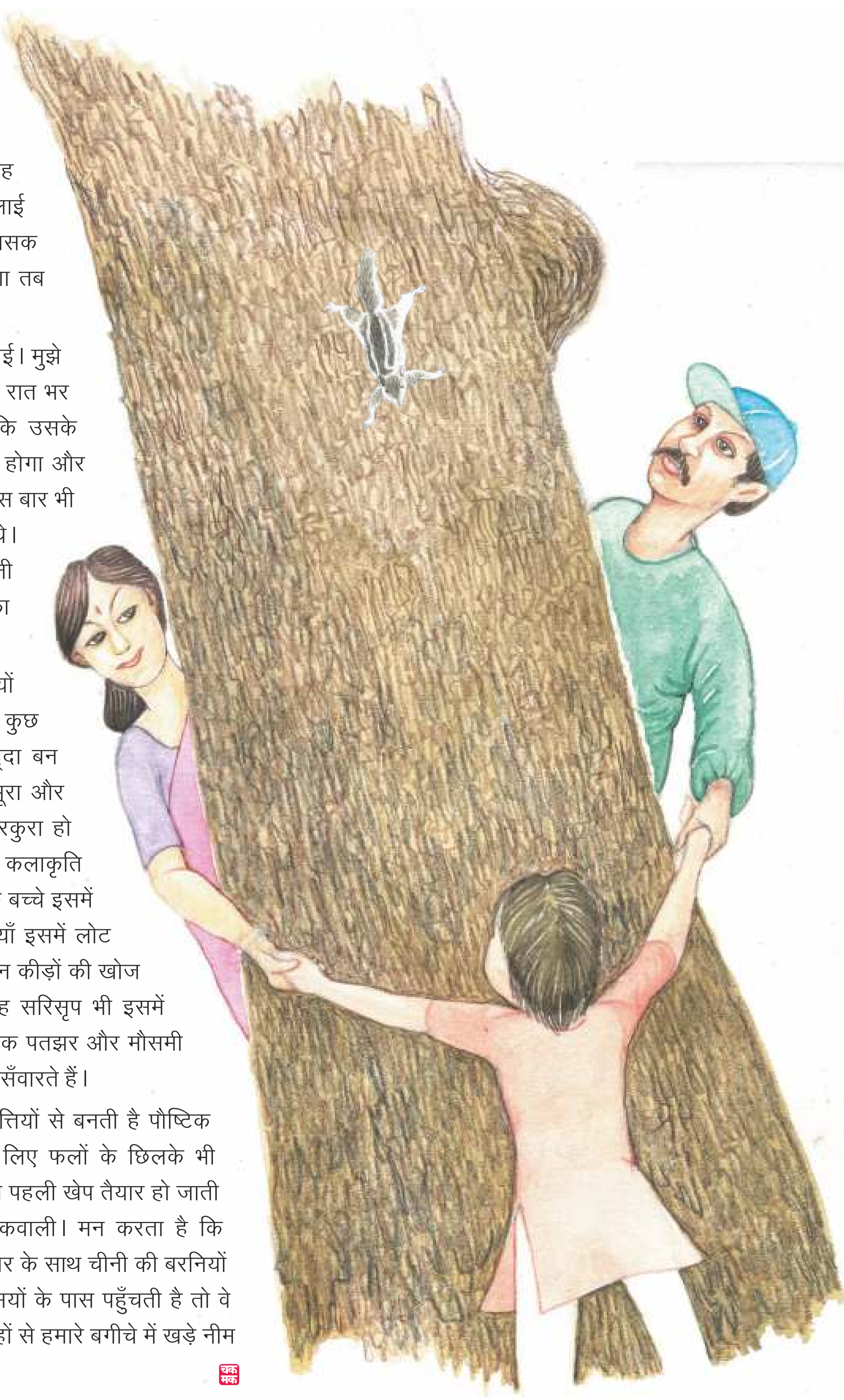

बसन्त की शुरुआत में इन चुनी हुई पत्तियों से बनती है पौष्टिक खाद। इसमें गोबर के अलावा महक के लिए फलों के छिलके भी मिलाता हूँ। गर्मी के अन्त तक इस खाद की पहली खेप तैयार हो जाती है। काली, दानेदार और भीनी-भीनी महकवाली। मन करता है कि इसके साथ रोटी खा लें। घर के ताज़ा अचार के साथ चीनी की बरनियों में यह खाद फूल-गमलों के शौकीन पड़ोसियों के पास पहुँचती है तो वे चकित रह जाते हैं। फिर कौतुक भरी निगाहों से हमारे बगीचे में खड़े नीम बाबा को निहारते हैं।

चित्रः दिलीप चिंचालकर

चित्र-कल्पना : ऊर्जा

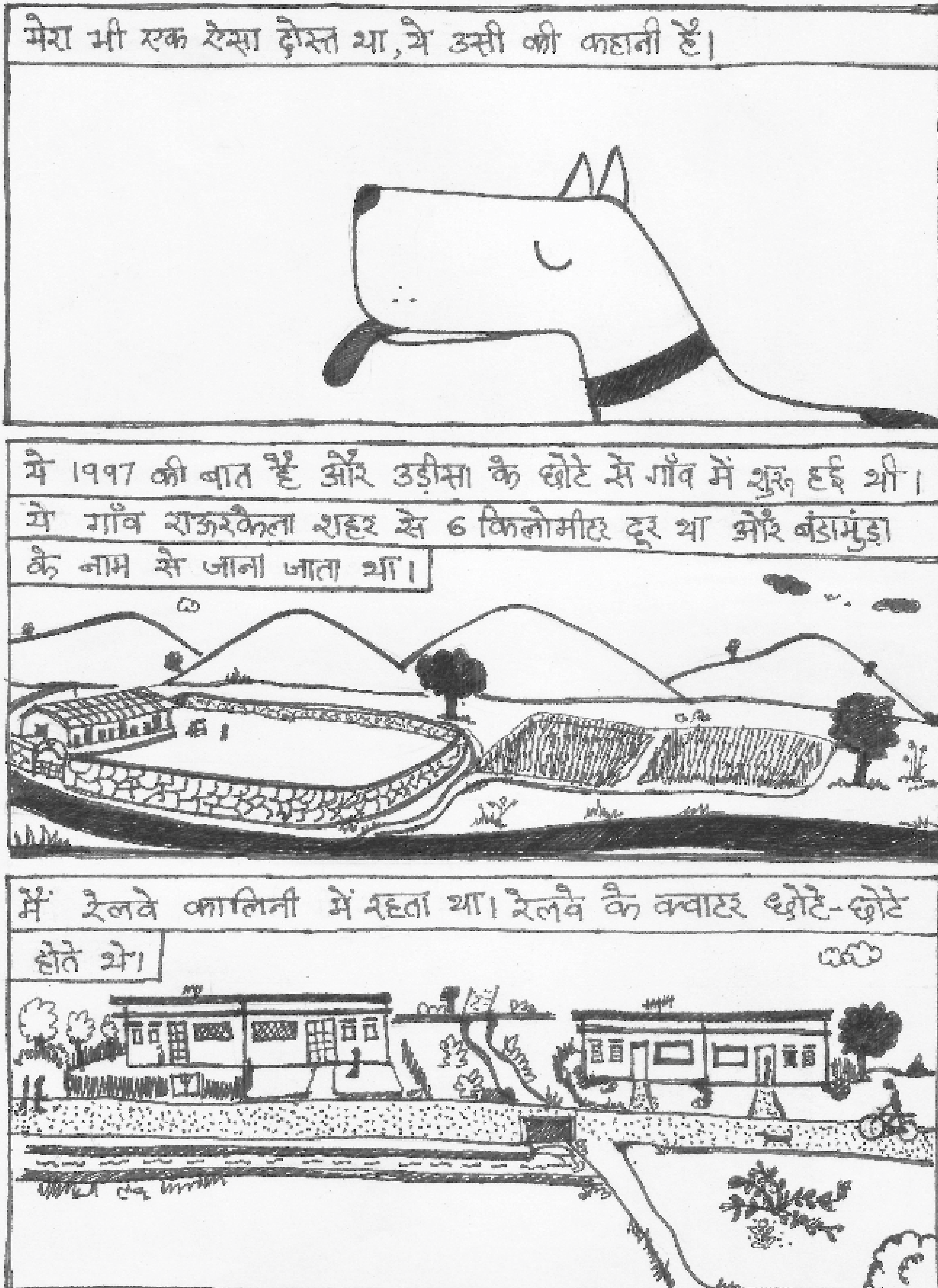
मेरा भी एक ऐसा दोस्त था, ये उसी की कहानी है।
ये 1997 की बात है और उड़ीसा के छोटे से गाँव में शुरू हुई थी।
ये गाँव राऊरकेला शहर से 6 किलोमीटर दूर था और बंडामुंडा के नाम से जाना जाता था।
मैं रेलवे कालोनी में रहता था। रेलवे के क्वाटर छोटे-छोटे होते थे।

और ये मैं हूँ मुझे घर पे सभी प्यार से बाबू कहके बुलाते थे।
नाम- शशि
रोल नं॰ - 35
क्लास - 7 बी॰
स्कूल - के॰वी॰ बंडामुंडा
हफ्ते के 6 दिन स्कूल जाना होता था।
पता नहीं सीखने के लिए स्कूल की क्या जरूरत है!
हर सुबह 8:45 को मेरा दोस्त गोविंदो गेट पर से आवाज़ देता
था, और ये सिलसिला क्लास 3 से चला आ रहा था।

जारा....

मेरा पन्ना

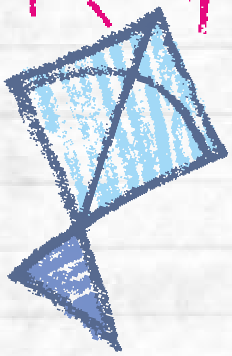

किताबों और खिलौनेवाली दुकान

एक बार एक किताबों और खिलौनोंवाली दुकान में एक बच्चा एक खिलौना लेने की ज़िद कर रहा था। उसके माँ-पापा ने उसकी बात मान ली। उन्होंने उस खिलौने को काउन्टर पर देने के लिए उस बच्चे से माँगा। बच्चे ने देने से मना कर दिया। उसे लगा वे उससे छीन लेंगे। वो उस खिलौने को लेकर भागने लगा। सब परेशान हो गए। तभी एक लड़की ने कहा कि इसे खिलौने का दूसरा पीस दे दो। सब खुश हो गए।

—अम्बर, 8 साल, आनन्द निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल, भोपाल

किसान और भालू

एक दिन किसान खेत से लौट रहा था। रास्ते में उसे एक भालू मिला। जैसे ही भालू को देखा बचाओ-बचाओ कहते वह झटपट दौड़ने लगा। गाँव के सारे लोग मिलकर भालू को बहुत दूर भगाए। उस दिन से उस गाँव में भालू कभी नहीं दिखा।

—विक्रम नेताम, दूसरी, इमली महुआ विद्यालय, छत्तीसगढ़

—अनुभव चमोली, नर्सरी, पौढ़ी गढ़वाल, उत्तराखण्ड

—आस्था भटनागर, छटी, डीपीएस पुणे, महाराष्ट्र

मेरा पन्ना

चूहा भाग गया...

एक बार की बात है। खरगोश खाने की तलाश में निकला था। उसे एक बगीचा मिला। उसे एक बगीचेवाला दिखाई दिया। तो खरगोश बोला कि मैं उसे झूठ (बुद्धू) बनाता हूँ। खरगोश बगीचेवाले के पास गया और बोला, "बगीचे में चूहा घुस गया है और वो तुम्हारा बगीचा खराब कर सकता है।" बगीचावाला बोला, "जाओ उसे भगा दो।" तो खरगोश बोला, "ठीक है", और खरगोश चला गया और गाजर खाने लगा। फिर जब खरगोश का पेट भर गया तो वो बगीचेवाले को बोला, "चूहा भाग गया।"

–हिमांशु सिन्हा, पाँचवीं,
अजीमप्रेमजी स्कूल धमतरी, छत्तीसगढ़

– कमलेश, छठी, भालावाग,
हिमाचल प्रदेश

गर्मी

गर्म-गर्म लू सन-सन
कूलर-पंखें दन-दन-दन
गर्मी से पक जाते आम
अमरस पीकर करते काम
गर्मी करती अपने खेल
कूलर-पंखें होते फेल
मच्छरों की भी शामत आई
गर्म-गर्म लू सन-सन
कूलर-पंखें दन-दन-दन

– मनीषा, झलक समूह,
दिगन्तर, जयपुर, राजस्थान

–रितिका ओझा, आठवीं,
संगम इंटरनेशनल स्कूल, प्रतापगढ़, उ. प्र.

चित्र: 15 वर्ष के अभिज्ञान ने यह चित्र छह साल पहले बनाया था, महाराजा सवाई भवानी सिंह स्कूल, जयपुर

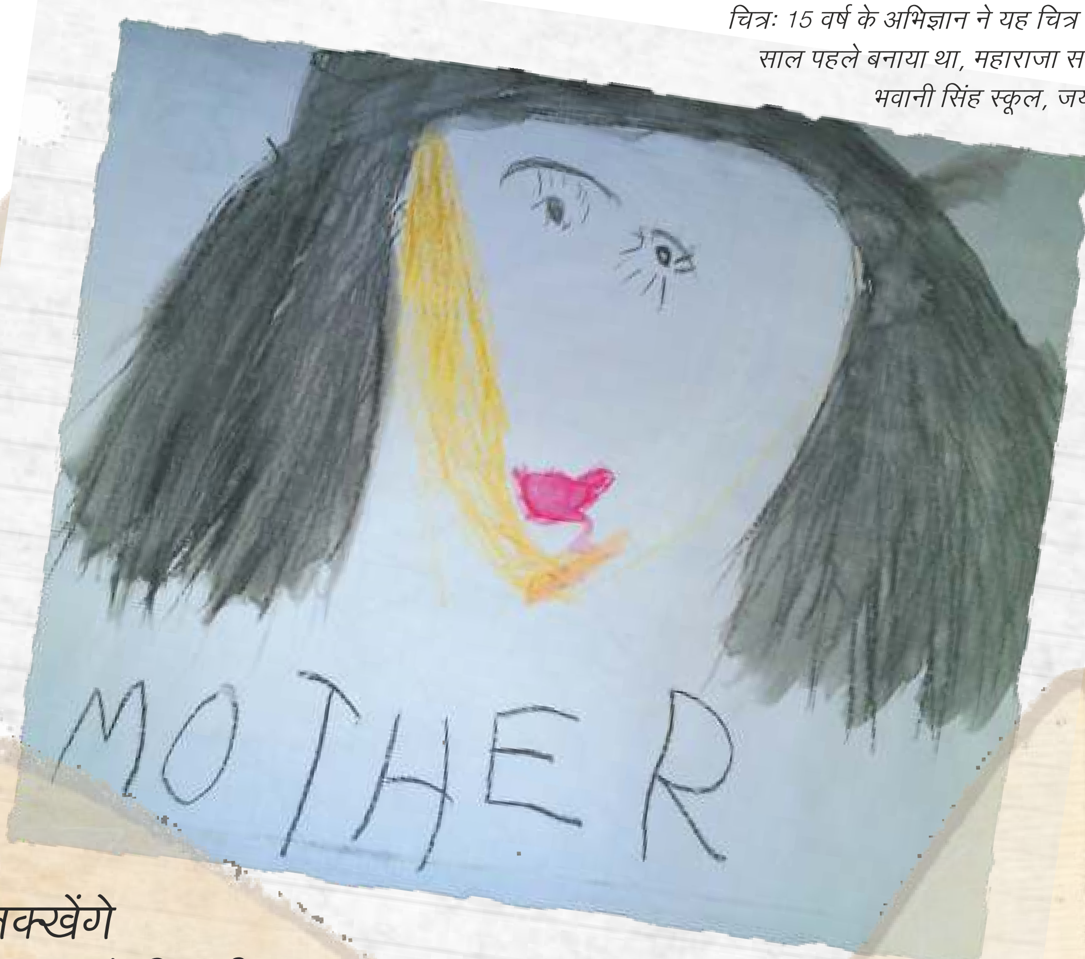

लिक्खेंगे अम्मा को चिट्ठी

सुशील शुक्ल

चीनी की एक लड़ी मिट्ठी
लिक्खेंगे अम्मा को चिट्ठी

चिट्ठी में बादल का टुकड़ा रख देंगे
मोड़ चाँद को थोड़ा सिकुड़ा रख देंगे
नमक लगाकर इमली कच्ची रख देंगे
एक बूँद एक नदी की बच्ची रख देंगे

चीनी की एक लड़ी मिट्ठी...

पंजाबी बाल उपन्यास

(पाँचवीं किस्त)

पहले नदी खो गई अब तलैया भी खो गई तो?

जसबीर भुल्लर

किरली मगरमच्छ का बाकी शरीर पानी में डूबा होता तो वह नाक को पानी से ऊपर रख साँस ले सकती थी। उसकी नाक और कानों के लिए झिल्लियाँ बनी हुई थीं। जब वह पानी के अन्दर ही तैरना चाहती तो वे झिल्लियाँ नाक और कानों को बन्द कर देती थीं। झिल्लियों के बन्द होने से उसकी नाक और कानों में पानी नहीं जा पाता था।

किरली की आँखों की झिल्ली पारदर्शी थी। इससे वह बन्द आँखों से पानी के अन्दर भी देख पाती थी। उसकी जीभ पर भी एक विशेष परत थी। जब वह पानी के भीतर मुँह खोलती तो जीभ की वह परत पानी को फेफड़ों में जाने से रोक देती थी।

किरली मगरमच्छ ने पानी के अन्दर कई बार चक्कर लगाया। पारदर्शी पलकों से उसने देख लिया था कि पानी में उसके लिए पर्याप्त भोजन नहीं था। उसे केवल दो-चार पूंग (छोटी मछली) ही तैरते दिखे थे। किरली पानी से बाहर आकर फिर से लेट गई। तलैया बहुत बड़ी न थी। यह उसके लिए चिन्ता की बात थी। इतने से जल में उसका गुज़ारा नहीं होनेवाला था।

वह क्या करे?

किरली से नदी खो गई थी। अब इस छोटी-सी तलैया को ही उस का घर बनना था। जब यहीं रहना था तो क्यों न तलैया को गहरा किया जाए! उस ने दिन का बाकी समय अपने घर को खुला करने में लगा दिया। उसने अपने मज़बूत जबड़े से तलैया के आसपास की झाड़ियाँ और पौधे साफ किए। नर्म मिट्टी और कीचड़ को उसने पँजों तथा पूँछ की सहायता से किनारों से दूर फेंकना शुरू कर दिया। बाढ़ ने मिट्टी को नरम कर दिया था। अँधेरा होने तक वह किनारों से मिट्टी खोदती रही।

किरली का काम अभी पूरा नहीं हुआ था। उसका काम अभी कई दिनों तक चलनेवाला था। दिन ढलने पर उसने अपने काम को सन्तोष भरी नज़रों से देखा।

उस समय जंगल घुप्प अँधेरे में डूबा हुआ था। त्जंगल की आवाज़ें उस अँधेरे में भी जाग रही थीं।

अँधेरे में लेटे-लेटे उसे मग्घू के साथ बिताए वे अन्तिम पल याद आ रहे थे। अचानक आई बाढ़ ने दोनों को अलग कर दिया था। वे शायद अब नहीं मिल पाएँगे। परन्तु अब वह कुछ समय बाद अण्डे देगी। उन अण्डों से छोटे-छोटे मगरमच्छ निकलेंगे। तब उसका भरा-पूरा परिवार होगा। यह बच्चे अकेले उसी के नहीं होंगे। लेकिन मग्घू मगरमच्छ अपने बच्चों के पास नहीं होगा।

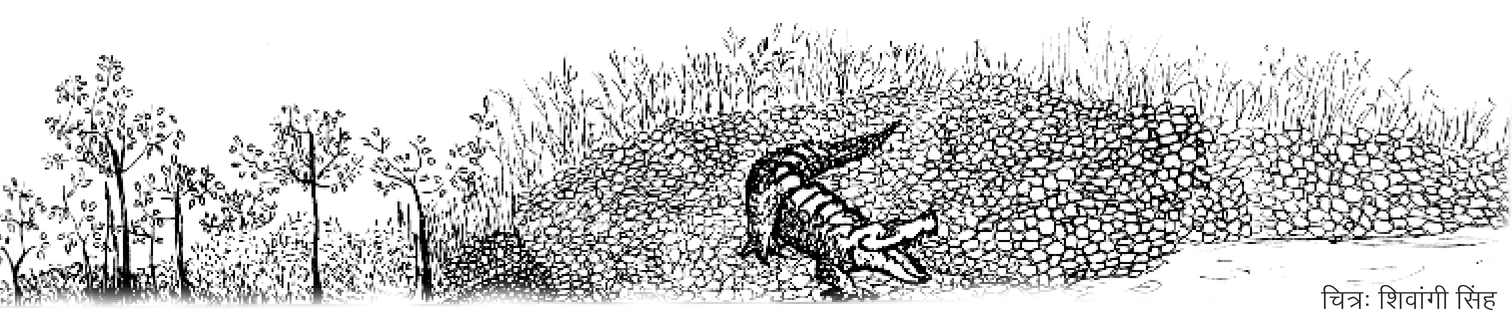

चित्र: शिवांगी सिंह

आज सूनी तलैया सारा दिन मादा मगरमच्छ को उदास करती रही थी।

अगले दिन भी किरली तलैया को चौड़ा करने में लगी रही। कभी वह किनारों को तोड़ने लगती तो कभी पूँछ और पैरों से तलैया से मिट्टी निकाल-निकालकर बाहर फेंकने लगती थी।

दोपहर को किरली कीचड़ से सनी तलैया से बाहर आई। उसने अपने काम का जायज़ा लिया। तलैया पहले से बड़ी हो गई थी। तलैया में पानी तो पहले भी ज़्यादा नहीं था। तलैया का घेरा बढ़ने से पानी और भी कम लगने लगा था। यह थोड़ा-सा पानी भी इस समय कीचड़ बन गया था।

तलैया को खुला करते समय किरली ने इस समस्या पर तो विचार ही नहीं किया था। इतना-सा पानी तो कुछ ही दिनों में सूख जाएगा। फिर वह क्या करेगी? आनेवाले दिनों में उसे अण्डे देने थे, बच्चे निकालने थे। उनका क्या होगा? पानी के बिना वे छोटे-छोटे मगरमच्छ क्या करेंगे?

उसका काम करने का उत्साह ठण्डा पड़ गया। पानी में लगातार काम करने से किरली का शरीर ठण्डा हो गया था। वह तलैया के किनारे पर आँखें मूँदकर धूप सेंकने लगी। उसने कुछ देर तक धूप में आराम किया और फिर आँखें खोल लीं। उसे भूख लग रही थी। वह जानती थी कि पानी में भोजन न था। अपने लिए भोजन की खोज उसे जंगल में ही करनी होगी।

वह खाना खोजने के अभियान पर निकल पड़ी।

पहले वह पानी की खोज में चली थी तो चलती ही गई थी। पानी उसे कठिनाई से मिला था। अब वह पानी से दूर नहीं जाना चाहती थी। पहले उससे नदी खो गई थी। यदि अब तलैया भी खो गई तो क्या पता पानी उसे फिर मिले न मिले।

किरली ने सीधे जंगल में जाने की बजाय तलैया के आसपास पहला चक्कर लगाया। यह उसका शिकार करने का तरीका नहीं था, पर वह क्या करे?

चित्र : अतनु राय

किरली मगरमच्छ की सूँघने, देखने और सुनने की शक्ति तेज़ थी। अचानक कोई आहट आई। उसने आँखें खोलीं। उसे झाड़ियों में से तलैया की दूसरी ओर शेर की झलक दिखाई दी। वह अधखाए शिकार को घसीटते हुए ले जा रहा था। वह रुक गई।

यह वही शेर था जिसने लँगड़े हिरण को मारा था। किरली और मग्धू मगरमच्छ ने मिलकर शेर से शिकार तो छीन लिया था, परन्तु खा नहीं पाए थे। वह हिरण बाद में इसी शेर का भोजन बना था। किरली इस बात से बड़ी गुस्सा हुई थी। उसने हमला करके शेर से शिकार छीनने का मन बना लिया।

शेर ने अभी एक जंगली सुअर का शिकार किया था। इस से पहले उसने एक चीतल को अपना ग्रास बनाया था। बाकी की भूख उसने सुअर का कुछ माँस खाकर मिटा ली थी। शेष बचे सुअर के माँस को वह किसी गुप्त स्थान पर छिपाने के लिए घसीटकर लाया था।

शेर को किरली मगरमच्छ के वहाँ होने की भनक तक न थी। उसने अधखाए सुअर को एक घनी झाड़ी में छिपाया और वहाँ से धीरे-धीरे चल दिया।

किरली मगमच्छ को शेर से लड़ने की ज़रूरत ही नहीं पड़ी। वह बिना हिले-डुले शेर को जाते देखती रही। शेर आँख से ओझल हो गया तो वह पेट और पँजों के बल रेंगती हुई झाड़ियों तक पहुँच गई। झाड़ी से उसने अधखाए सुअर को बाहर खींच लिया और घसीटकर तलैया तक ले गई।

शेर के द्वारा किए शिकार से उसने पेट भर लिया। सन्तुष्ट होने पर वह कुछ देर के लिए तलैया में घुस गई और फिर बाहर आकर कीचड़ में लेट गई। पूरी दुपहरी किरली ऐसे ही पड़ी रही। शाम को जब उसने

(शेष भाग पेज 25 पर)

“अ” अनार का, “आ” आम का

सुशील जोशी

चित्रः अतनु राय

क्या तुमने कभी सुना है कि कुछ लोगों को कोई खास अक्षर (जैसे N या P) देखते ही मुँह में चॉकलेट का स्वाद आ जाता है या चर्च की घण्टियाँ सुनाई पड़ने लगती हैं। इस तरह की संवेदना को सह-संवेदना या अँग्रेज़ी में सिनेस्थेशिया कहते हैं। है ना मज़ेदार कि आँख से देख रहे हैं और स्वाद का मज़ा ले रहे हैं। जब कुछ लोगों ने ऐसी बात बताई तो पहले तो किसी ने यकीन ही नहीं किया। मगर फिर कुछ प्रयोगों से पता चला कि ऐसा सचमुच होता है तो माना गया कि ऐसी सह-संवेदना बहुत ही विरले लोगों में पाई जाती है। मगर जब इस बात का पता चला तो कई लोगों ने बताया कि उन्हें भी ऐसा होता है। और यह सिर्फ अक्षर और स्वाद तक सीमित नहीं है, कई लोगों को मन्दिर की घण्टियाँ सुनकर रंग दिखते हैं तो कुछ लोगों को... खैर उन सारे उदाहरणों में न जाते हुए देखते हैं कि ऐसा होता क्यों है।

हमारे शरीर में कई संवेदनाएँ होती हैं यानी हमारा शरीर कई चीज़ों को महसूस कर सकता है। जैसे यदि तुम्हारे शरीर को कोई चीज़ छुए तो तुम्हें पता चल जाता है – इसे स्पर्श की संवेदना कहते हैं। यह संवेदना पूरे शरीर पर पाई जाती है हालाँकि अलग-अलग भागों में यह कम या ज़्यादा हो सकती है। इसी प्रकार से गन्ध, स्वाद, ध्वनि और प्रकाश की संवेदनाएँ भी होती हैं।

ये तो वे संवेदनाएँ हैं जो किसी बाहरी चीज़ के कारण होती हैं। फिर कई संवेदनाएँ ऐसी भी हैं जो हमारी अपनी आन्तरिक होती हैं। जैसे भूख लगने का एहसास होना पूरी तरह आन्तरिक है। कई मामलों में दर्द का एहसास भी आन्तरिक ही होता है।

तुमने शायद पाँच इन्द्रियों की बात सुनी या पढ़ी होगी। लेकिन वैज्ञानिक मानते हैं कि हमारे शरीर में पाँच नहीं बल्कि दर्ज़नों संवेदनाएँ होती हैं। मगर कुछ संवेदनाएँ शरीर में थोड़ी-सी जगह पर केन्द्रित हो गई हैं। जैसे स्वाद की संवेदना जीभ पर केन्द्रित है – बाकी शरीर पर चाशनी रगड़ते रहो, मीठा नहीं लगेगा (हालाँकि गीलापन और चिपचिपापन लग

सकता है और चींटियाँ भी आ सकती हैं)। तो जीभ स्वादेन्द्रिय हुई। वैसे जीभ में स्पर्श को महसूस करने की क्षमता भी होती है। तो जिन अंगों पर कुछ संवेदनाएँ केन्द्रित रूप में पाई जाती हैं उन्हें इन्द्रिय कहा जाता है। मगर इसका मतलब यह नहीं है कि संवेदनाएँ पाँच ही हैं।

किसी चीज़ को महसूस करने के लिए हमारे शरीर में तंत्रिकाएँ होती हैं। तंत्रिका का एक सिरा महसूस करनेवाली जगह पर होता है और दूसरा सिरा दिमाग में जुड़ा होता है। तंत्रिका को तार के समान मान सकते हैं। जब शरीर या इन्द्रियवाले सिरे पर संवेदना मिलती है तो वह सक्रिय हो जाता है। इस संवेदना को उद्दीपन कहते हैं। तंत्रिका सक्रिय होकर दिमाग को एक सन्देश भेजती है। दिमाग में यह सन्देश पहुँचते ही हमें उस उद्दीपन का पता चल जाता है।

इसमें एक मज़ेदार बात पर ध्यान देना ज़रूरी है। सारी तंत्रिकाएँ जो सन्देश दिमाग को भेजती हैं वे सन्देश एक जैसे होते हैं। कहने का मतलब है कि जीभ पर स्थित स्वाद से सम्बन्धित तंत्रिका हो या आँख की प्रकाश से सम्बन्धित तंत्रिका, उनके सन्देश एक जैसे होते हैं। अर्थात मीठे स्वाद, फूल की खूशबू, फिल्म की ढिशुम-ढिशुम, सबके बारे में दिमाग को एक जैसे सन्देश मिलते हैं। तो तुम पूछोगे कि फिर हमें पता कैसे चलता है कि कौन-सा सन्देश रसगुल्ले का है और कौन-सा मधुर संगीत का!

जवाब यह है कि हरेक तंत्रिका का सन्देश दिमाग के किसी विशेष हिस्से में पहुँचता है। जैसे मीठेपन का सन्देश दिमाग के एक हिस्से को पहुँचता है। दिमाग के उस हिस्से में जो भी सन्देश पहुँचेगा, दिमाग समझेगा कि मीठेपन का सन्देश है। यानी किस सन्देश को दिमाग क्या समझेगा, यह इस बात से तय होता है कि वह सन्देश दिमाग के किस हिस्से में पहुँचा है।

जन्तुओं पर प्रयोग कर-करके इन बातों का पता चला है। अब तुम समझ ही सकते हो कि पूरे शरीर में तंत्रिका नामक तारों का जो जाल बिछा है, वह कितना सावधानी से बिछा है और थोड़ी-सी भी गड़बड़ होने पर संवेदनाओं में गड्ड-मड्ड हो सकती है। जैसे यदि कानों से निकलनेवाला सन्देश स्वादवाले हिस्से में पहुँच जाए, तो आवाज़ की बजाय स्वाद का एहसास होगा।

सह-संवेदना में यही होता है। गलती से एक संवेदना का तार दिमाग में किसी दूसरे हिस्से से भी जुड़ जाता है। यदि अक्षर पहचान की संवेदना का तार स्वादवाले हिस्से से भी जुड़ा है तो तुम समझ ही सकते हो कि कोई अक्षर विशेष सामने आने पर चॉकलेट का स्वाद आ सकता है।

वैसे कितना अच्छा होता ना कि हम सबमें "अ" की तंत्रिका अनार से और "आ" की तंत्रिका आम से जुड़ जाती। किताब पढ़ने में ज़्यादा मज़ा आता और अनार-आम खरीदने का खर्च भी बच जाता। पढ़ते ही पता चल जाता कि "अ" अनार का होता है और "आ" आम का।

पहले नदी खो गई

(पेज 27 का शेष भाग)

आँखें खोलीं तो पानी की ओर देख कर हैरान रह गई। तलैया का पानी न केवल निथरा हुआ था बल्कि साफ पानी पहले की तरह तलैया में ऊपर तक भर गया था। नदी भले ही किरली मादा मगरमच्छ की पहुँच से दूर थी, लेकिन इतनी दूर भी नहीं थी कि पानी रिसकर उस तलैया तक न पहुँच पाए।

अब किरली को सूखे की भी कोई आशंका न रही थी। उसे अण्डे देने के लिए जगह तैयार करने की ज़रूरत महसूस हुई। उसने पानी से कुछ दूर हटकर मिट्टी का एक लोंदा-सा बनाया। मिट्टी के उस ढेर के बीचोंबीच उसने गहरा गड्ढा बना दिया। इस गड्ढे में किरली को अण्डे देने थे। उसके अण्डों की संख्या निश्चित न थी। वे तीस से लेकर नब्बे तक कुछ भी हो सकते थे। उसने गड्ढे को कुछ और चौड़ा किया और टहनियाँ इकट्ठा करने चल दी।

टहनियों को उसने गड्ढे में करीने से बिछा दिया। तलैया के गारे से टहनियों को लीपकर उसने गड्ढे को पक्का कर लिया।

अब अण्डे देने के लिए घोंसला बिलकुल तैयार था।

जब समय आया तो किरली मगरमच्छ ने उस गड्ढे को सफेद रंग के अण्डों से भर दिया। अण्डों को सेने के लिए गर्माहट की आवश्यकता थी। उसने घोंसले के ऊपर मोटी-मोटी टहनियों की छत डाल दी और छत को भी गारे से लीप दिया।

अगले अंक में जारी...

पहली उड़ान

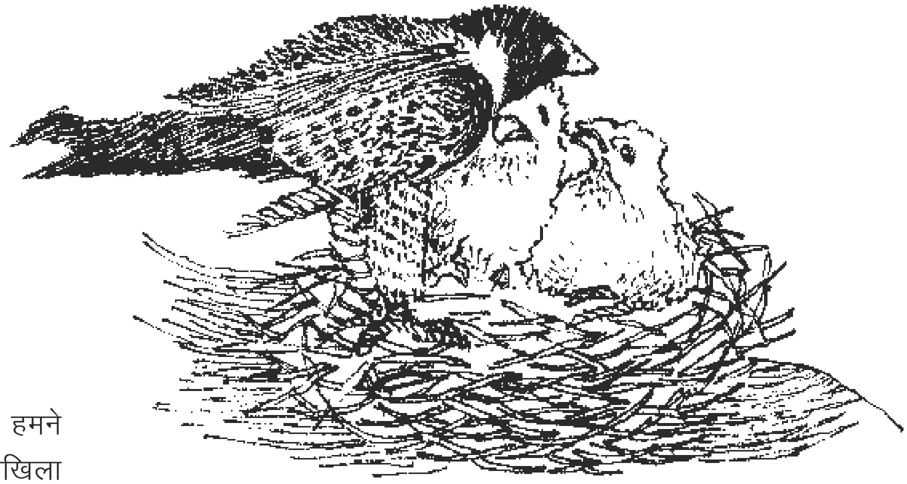

अमित कुमार

यह कोई सोलह साल पहले की घटना है। हमने दसवीं की परीक्षा पास करके ग्यारहवीं में दाखिला लिया था। दसवीं पास होने के बाद से हमारा उत्साह और आत्मविश्वास दोनों चरम पे थे। हम खुद को युवा समझने लगे थे।

हमारा शहर था तो काफी छोटा पर हर लिहाज़ से काफी समृद्ध था। पठार पर बसे इस शहर के चारों ओर ऊँचे पहाड़ थे और छितराया हुआ जंगल था। हमें यानी मैं और मेरे तीन दोस्तों को घूमने का बड़ा शौक था। हम रोज़ शाम को शहर के पश्चिमी छोर की ओर साइकिल चलाते हुए निकल जाते थे। उन दिनों साइकिल चलाते हुए बातें करना हमारे लिए दुनिया की सबसे सुखद बात थी।

हम चार किलोमीटर साइकिल चलाते हुए जाते और फिर एक ऊँचे टीले पर बैठ दुनिया-जहान की बातें करते। उस टीले के ठीक सामने एक ऊँचा पहाड़ था। उससे सटी हुई एक घाटी थी जो बरसातों में तेज़ बहती नदी में तब्दील हो जाती थी। घाटी के उस पार थोड़ा समतली इलाका था। बड़े-बड़े पत्थर और पेड़ जहाँ-तहाँ बिखरे थे। कुछ बड़े पत्थरों के आसपास झाड़-झंखाड़ भी थे जिनमें खरगोश, सेही आदि यदाकदा दिख जाते थे। कभी किसी पत्थर पर नेवलों का परिवार धूप सेंकता दिख जाता जो जंगली बिल्ली की आहट पाते ही पत्थरों के नीचे बने बिलों में दुबक जाता था। हमारे टीले के ठीक पीछे जब सूरज डूबता तो उसका प्रकाश उस ऊँचे खड़े पहाड़ पर पड़ता। और सब कुछ रोशन हो जाता।

कुछ दिनों से हम बड़ी चट्टान की एक दरार में उकाब (बाज़) के एक जोड़े को बार-बार उतरते देख रहे थे। हम समझ गए कि यह जोड़ा घोंसला बना रहा है। लगभग दस दिन बीतते-बीतते एक बड़ा-सा छितराया घोंसला बनकर तैयार हो गया था। और मादा उकाब उसमें बैठ अण्डे सेने लगी थी। मादा नर से थोड़ी बड़ी और भारी थी। धीरे-धीरे हमें उकाब के उस जोड़े को और उनकी हर हरकत को देखना काफी दिलचस्प लगने लगा था।

हमने एक दूरबीन की भी व्यवस्था कर ली थी ताकि उन्हें करीब से देख सकें। एक महीने बाद उस घोंसले में एक चूज़ा नज़र आया। धूमिल सफेद रंग का यह चूजा दिखने में ऐसा था मानो उस पर पंख चिपका दिए हों। पहले ही दिन से उस चूज़े की खिलाई-पिलाई शुरू हो गई थी। मादा उकाब शिकार कर लाए गए खरगोश, गिलहरी, चूहे, चिड़ियों आदि के छोटे-छोटे निवाले बनाकर नन्हे को बड़े प्यार से खिलाती। शिकार अकसर नर लाता। नर का मादा को शिकार सौंपने का तरीका भी बड़ा अनोखा था। नर शिकार को पंजे में दबाकर लाता और घोंसले के पास पहुँचकर आवाज़ करता। इससे मादा घोंसला छोड़कर हवा में आ जाती। नर शिकार को मादा की ओर उछाल देता जिसे मादा हवा में ही लपक लेती।

उस चूज़े की उम्र एक हफ्ता होते-होते घोंसले में दूसरा चूज़ा दिखने लगा था। माँ जब छोटे चूज़े को चुगाती तो बड़ा चूज़ा झपटकर निवाला छीन लेता। जब छोटा चूज़ा तीन दिन का हुआ तो एक अप्रत्याशित घटना घटी। मादा उकाब घोंसला छोड़कर शायद शिकार के लिए उड़ी ही थी कि बड़े चूज़े ने छोटे को चोंच मारना शुरू कर दिया। एक हफ्ते के चूज़े की चोंच इतनी पैनी थी कि छोटा चूज़ा लहूलुहान होकर गिर पड़ा और कुछ देर में मर गया।

हम लोग साँसें थामे देखते रहे। तभी मादा उकाब लौट आई। उसकी चोंच में एक छोटा साँप था। वह जैसे ही घोंसले में बैठी, चूज़े ने उसकी चोंच से साँप को छीनना शुरू कर दिया और देखते ही देखते समूचे साँप को निगल गया। मादा ने घोंसले का मुआयना किया पर मृत चूज़े को देखकर कोई प्रतिक्रिया नहीं की। थोड़ी देर बाद मादा उकाब ने उस मृत चूज़े का निवाला बनाकर बड़े चूज़े को बड़े प्यार से खिला दिया। यह हम लोगों के लिए एकदम अप्रत्याशित था। उकाब के इस व्यवहार से हमारे अन्दर अजीब-अजीब से भाव उठ रहे थे।

धीरे-धीरे अँधेरा घिरने लगा और हम लौटने के लिए उठ खड़े हुए। रास्ते भर हमारा मन भारी रहा। किसी ने कोई बात नहीं की। अगले दिन हमारा वहाँ जाने का मन नहीं हुआ। उसके अगले दिन टोली का रणवीर अपने पिता के दफ्तर की लाइब्रेरी से शिकारी पक्षियों पर एक किताब ले आया। किताब से पता चला कि बड़े शिकारी पक्षियों को बसर (सरवाइवल) के लिए एक बड़े इलाके की ज़रूरत होती है। शायद तभी आमतौर पर ये एक ही बच्चे को पाल-पोसकर बड़ा करते हैं। दो या तीन अण्डे होने का फायदा यह होता होगा कि अगर पहला अण्डा या चूज़ा किन्हीं कारणों से जी नहीं पाए तो दूसरे को पाल-पोस लें।

फिलहाल उस किताब ने उकाब माँ के लिए हमारे मन में पैदा हुए आक्रोश को लगभग खत्म कर दिया था। चौथे दिन से हम अपनी पहले की दिनचर्या में लौट आए थे।

अब हमारे पास एक ज़ूमलैंस कैमरा भी था। इन चार दिनों में बच्चा कुछ और बड़ा हो गया था। अब वो घोंसले में ही अपने डैनों को फड़-फड़ाकर मज़बूत करते हुए उन्हें उड़ने के काबिल बनाने की प्रैक्टिस करता। अपने जन्म के ठीक तीन माह दस दिन बाद वह घोंसले से बाहर निकलकर दरार के मुहाने तक आया। हालाँकि फुदक-फुदककर घोंसले से बाहर निकालने का उसका तरीका बड़ा बेढब और फूहड़ था। पर उड़ना सीखने के लिए यह ज़रूरी भी था। अब डैने फैलाने और फड़फड़ाने का उसका तरीका पहले से बेहतर हो गया था।

मैंने उसकी बहुत सारी तस्वीरें खींची। तस्वीरें देखकर साफ था कि मुझे फोटोग्राफी पर अभी काफी मेहनत करनी है। खैर, धीरे-धीरे उस उकाब परिवार और फोटोग्राफी दोनों में मेरी दिलचस्पी इतनी बढ़ गई थी कि मैं छुट्टीवाले दिन सुबह दस बजे अकेले ही टीले पर जा पहुँचता। एक-दो घण्टे वहाँ रहता और फिर लौट आता। ऐसे ही एक दिन जब मैं फोटो लेने के लिए कैमरा सेट कर ही रहा था कि एक आश्चर्यजनक घटना घटी।

नर उकाब ने घोंसले के बाहर बैठे अपने किशोर हो चुके बच्चे पर हमला कर दिया। यह उसे घोंसले से खदेड़ने के लिए सांकेतिक हमला था। पहले तो किशोर उकाब अपना बचाव करते हुए मादा उकाब की ओर मदद की उम्मीद से देखता रहा। पर मादा उकाब की बेपरवाही देखकर उसे उड़ान भरने के लिए बाहर निकलना ही पड़ा। उसकी यह पहली उड़ान इतनी कच्ची थी कि वह नीचे की ओर ग्लाइड करके जैसे-तैसे गिरते-पड़ते एक पेड़ की छरहरी शाखा पर उतर पाया।

मेरा कैमरा तैयार था। मैंने झटपट उसकी पहली उड़ान के दो-तीन शॉट ले लिए। किशोर उकाब पेड़ पर खुद को सम्भाल नहीं पा रहा था। वह भैराया हुआ गिरने लगा तो उसने अपने डैने फड़फड़ाए। इससे उसे सन्तुलन मिला और

वह पास के एक टीले पर बैठ गया। वह थक गया था और घबराया हुआ भी था।

अब तक मादा उकाब उसके पास आ गई थी। नर उकाब भी पास के टीले पर उतरकर उचक-उचककर चलते हुए उसके पास पहुँचा। शायद वो उसकी हिम्मत बँधा रहा था! किशोर उकाब को इससे बल मिला। अपने डैनों को धीरे-धीरे फैलाते हुए उसने उन्हें फड़फड़ाया और पैरों से पत्थर को पीछे की ओर धक्का देते हुए अपनी उड़ान भरी।

वह थोड़ी दूर तक उड़ा, फिर बेदम होकर एक दूसरे टीले पर उतर गया। वह टीला कम ऊँचा था पर मुझे साफ दिख रहा था। तभी मादा उकाब शोर मचाते हुए हवा में चक्कर काटने लगी। नर उकाब भी टीले के करीब की एक बड़ी चट्टान के पास शोर मचाते हुए गोते मारने लगा था। मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। और जब समझ में आया तो मेरी धड़कन इतनी बढ़ गई कि साँसें फूलने लगीं। उस चट्टान की ओट से एक स्याहगोश उस किशोर उकाब पर घात लगाए बैठा था।

स्याहगोश बिल्ली परिवार का एक अत्यन्त फुर्तीला प्राणी है जो पक्षियों के शिकार में सबसे माहिर बिल्ली माना जाता है। मैंने कैमरे को ज़ूम करना चाहा पर मेरी हिम्मत जवाब दे रही थी। मुझे ऐसी घबराहट हो रही थी कि जैसे वह स्याहगोश मुझ पर ही घात लगाए बैठा है। उकाब जोड़े के शोर मचाने का कोई फायदा नहीं हुआ। दबे पाँव पत्थरों के बीच से निकलकर उसने किशोर उकाब पर झपट्टा मार दिया।

एक झटके के साथ उस किशोर उकाब की गरदन उसके मुँह में आ गई। उसके डैने फड़फड़ा रहे थे और पंजे तेज़ी से ऊपर-नीचे हो रहे थे। नर उकाब ने एक बार फिर गोता लगाकर स्याहगोश पर आक्रमण किया पर उसने फुर्ती से

चित्रः दिलीप चिंचालकर

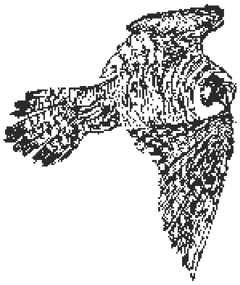

झुककर अपना बचाव किया। उस बचाव में उसके दाँतों में दबा उकाब छूट गया और पत्थरों पर इधर-उधर उछलने-तड़पने लगा। स्याहगोश ने दुबारा झपट्टा नहीं मारा जैसे वह जानता था कि यह उसका आखरी संघर्ष है। थोड़ी देर में वह उकाब शान्त हो गया।

मुझे पसीना आने लगा। मन में अजीब-सी बेचैनी और घबराहट थी। मैं दम साधे देख रहा था। नर और मादा उकाब तेज़-तेज़ आवाज़ करते हुए इधर-उधर मँडरा रहे थे। स्याहगोश चट्टानों पर कूदते हुए उस मृत उकाब तक पहुँचा और उसकी गर्दन अपने मुँह में दबाकर इधर-उधर देखने लगा। अगले ही पल छलाँग लगाता हुआ वह नीचे की पहाड़ी ढलान में ओझल हो गया।

मैं वहीं घण्टों निढाल बैठा रहा। जी भरकर रोने की इच्छा हो रही थी। खैर, धीरे-धीरे मेरी दिनचर्या सामान्य होने लगी। फोटो बनाने के लिए कैमरा रोल को फोटो लैब भेजा। फोटो में उकाब की वह पहली उड़ान बेहद जीवन्त थी। वह दिन बड़ी उदासी में बीता।

एक दिन एक पत्रिका के पन्ने पलटते हुए मुझे उसमें फोटोग्राफी प्रतियोगिता का विज्ञापन दिखा। मैंने अपनी तस्वीर भेजी। कोई चार माह बाद पता चला कि मेरी तस्वीर प्रथम पुरस्कार के लिए चुनी गई है। आश्चर्य कि उस पत्रिका ने भी उस फोटोग्राफ को "पहली उड़ान" शीर्षक दिया था। मैंने उसी क्षण फैसला कर लिया कि मैं वन्य जीवन (वाइल्ड लाइफ) फोटोग्राफी को ही अपना कैरियर बनाऊँगा।

उस घटना को बीते आज सोलह साल हो गए हैं। मैं वही बना जो बनना चाहता था। आज जाने क्यों वो किशोर उकाब अचानक बहुत याद आ रहा है... चकमक

एक से बढ़कर एक...

विवेक मेहता

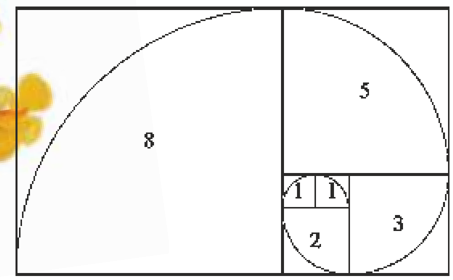

तुमने किसी नम्बर सीरीज़ के बारे में सुना है! 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7... यह भी एक सीरीज़ ही है जिसमें हर अगला नम्बर पिछले नम्बर से बस एक ज़्यादा होता है। तुम भी इसी तरह कई सीरीज़ बना सकते हो। जैसे 2, 4, 6, 8, 10.... या 1, 3, 5, 7, 9, 11...

अंकों के संसार में एक और सीरीज़ है जो काफी विख्यात है – फिबोनाची सीरीज़। इस सीरीज़ की शुरुआत दो संख्याओं से होती है, 0 व 1। इसके बाद सीरीज़ को आगे बढ़ाने के लिए नया अंक पिछले दो अंकों को जोड़कर निकाला जाता है। यानी 0, 1 के बाद सीरीज़ का अगला अंक होगा 1 (0 + 1)। इस तरह आगे बढ़ते जाने से सीरीज़ कुछ ऐसी दिखाई देगी 0, 1, 1, 2, 3, 5, 8, 13, 21, 34, 55, 89, 144...

इस सीरीज के कई गुण हैं जो इसे खास बनाते हैं, लेकिन उस पर बात फिर कभी। इस बार के लिए उस एक बात की जाँच-पड़ताल करते हैं जिसे हमारे एक शिक्षक ने कक्षा में बताया था। वह यह कि फिबोनाची सीरीज़ की संख्याएँ अकसर ही कुदरती रूप से दिख जाती हैं। जैसे फूलों की पंखुड़ियों की संख्या अकसर फिबोनाची सीरीज़ की ही कोई संख्या होती है जैसे 3, 5 या 8। मार्च-अप्रैल के महीनों में कई फूल खिलते हैं। चलो देखते हैं कि यह बात कितनी सही है!

चकमक

माथापच्ची

1 सांग्ला घाटी की सैर

हिमाचलप्रदेश में एक ज़िला है लाहौलस्पिति। दस हज़ार फीट की ऊँचाई पर बसी इस जगह में मैं और मेरा दोस्त हाल ही में घूमने गए। वहाँ वे एक दुकान में हमें दो लोग मिले। उनमें से एक केवल स्थानीय भाषा बोलता था, जो हमें नहीं आती थी। बातों-बातों में पता चला कि उनमें से एक हमेशा सच बोलता था और दूसरा हमेशा झूठ बोलता था। पता चला तो मैंने एक से अँगेज़ी में पूछा, "क्या तुम सच बोलते हो?" वो बोला, "जिगा।" दूसरा व्यक्ति जो अँग्रेज़ी जानता था बोला, "इसने हाँ बोला है। पर यह झूठा है।" हम दोनों तो चकरा गए। हमें पता कैसे चले कि कौन सच बोल रहा है? (मनीष जैन)

चित्रः मानस जैन

2

• पीले रंग के फूल को नीले रंग के काँच से देखें तो वह किस रंग का दिखेगा और क्यों?

•नीचे दिए गए पहले दो कथनों के आधार पर बताओ कि तीसरा कथन सही है, गलत है या उसके बारे में पक्के तौर पर कुछ कह नहीं सकते।

1. बगीचे में लगे सभी गुलाब के फूल सफेद रंग के हैं।
2. बगीचे में लगे सभी कनेर के फूल पीले रंग के हैं।
3. बगीचे में लगे सभी फूल या तो सफेद रंग के हैं या पीले।

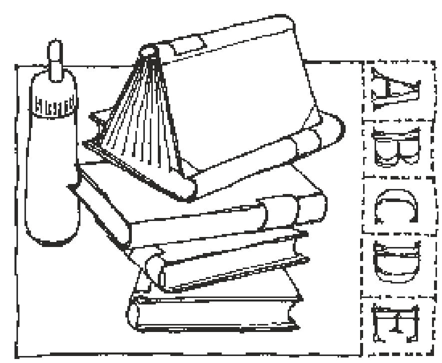

4

• मेज़ पर ए, बी, सी, डी, ई चिप्पी लगी हुई पाँच किताबें रखी हैं। **ए** चिप्पीवाली किताब **ई** चिप्पीवाली किताब के नीचे रखी है। **सी** चिप्पीवाली किताब **डी** चिप्पीवाली किताब के ऊपर रखी है। **बी** चिप्पीवाली किताब **ए** और **डी** चिप्पीवाली किताबों के नीचे और **ई** चिप्पीवाली किताब के ऊपर रखी है। कौन-सी किताब मेज़ की सतह को छूती है?

अप्रैल की चित्र पहेली हल

कै	री			श	ह	तू	त	
र		गा	ज	र			ट	ब
म	क	ड़ी		ब	टु	आ		क
	ठ		सा	त		ग	ठ	री
	पु	लि	या		चा		ठे	
खे	त			म	क	ब	रा	
	ली	प	ना			र		सा
काँ		त्त		ता		ग	ट्ठ	र
च	प्प	ल		श	ह	द		स

• सोने की वह चीज़ है
लेकिन बेचे नहीं सुनार
मोल तो ज़्यादा नहीं है उसका
लेकिन ज़्यादा है भार (तराजू)

• पैदा होते ही उड़े
सीधे नभ में जाता
पंख नहीं है फिर भी वह
सीधे नभ में गायब हो जाता (धुआँ)

पाँच खम्बोंवाला गाँव

मुकेश मालवीय

बहुत दिन पहले की बात है। एक गाँव में बिजली के खम्बे लगाए जा रहे थे। खम्बों का लगना गाँव के लिए अनोखी बात थी। सबसे पहले एक गहरा गड्ढा किया जाता। उसमें जतन से रस्सियों के सहारे सीमेंट का खम्बा खड़ा किया जाता। पूरा गाँव इस काम में जुटता। कोई काम करनेवालों को पानी पिलाता, कोई उन्हें सुपारी खिलाता। सब मिलकर रस्सियाँ खींचते। उन दिनों सारा गाँव उल्लास भरी मुहिम में लगा था। कुछ ही दिनों में गाँव में पाँच खम्बे खड़े हो गए थे।

अचानक एक दिन खम्बे लगानेवाले चले गए।

गाँववाले रोज़ उनके लौटने का इन्तज़ार करते। गाँव में बस बिजली की बातें ही होती। कुछ दिनों बाद बच्चों ने इन खम्बों के साथ नए खेल बनाने शुरू किए। खम्बों को छूने का खेल, उन पर चढ़ने का खेल। ऊपर चढ़कर दूर के गाँव देखने का खेल।

इस तरह कई दिन बीत गए।

एक शाम एक लड़की अपने घर के सामने लगे खम्बे पर चढ़ी। और उस पर अपने घर की जलती लालटेन टाँग आई।

खम्बे पर जलती लालटेन पूरे गाँव ने देखी। बच्चे बहुत रात तक उस खम्बे के नीचे खेलते रहे।

अगली शाम पाँचों खम्बों पर जलती लालटेन टँगी थी।

खम्बों पर लालटेन टाँगने का काम अब बच्चे रोज़ाना करते। इसमें उन्हें बहुत मज़ा आता।

आसपास के गाँवों से यह गाँव रात में भी दिखाई देता। धीरे-धीरे यह गाँव पाँच खम्बोंवाला गाँव कहलाने लगा।

चक मक

चित्रः अतनु राय

धार

अरुण कमल

कौन बचा है जिसके आगे
इन हाथों को नहीं पसारा

यह अनाज जो बदल रक्त में
टहल रहा है तन के कोने-कोने
यह कमीज़ जो ढाल बनी है
बारिश सरदी लू में
सब उधार का, माँगा चाहा
नमक-तेल, हींग-हल्दी तक
सब कर्ज़े का
यह शरीर भी उनका बन्धक

अपना क्या है इस जीवन में
सब तो लिया उधार
सारा लोहा उन लोगों का
अपनी केवल धार।

अपनी केवल धार

रुस्तम सिंह

यह उन कविताओं में से है जिनमें कुछ अर्थ छुपे हुए होते हैं। यानी कविता को पढ़ने पर ऊपरी तौर पर जो अर्थ नज़र आते हैं या समझ में आते हैं, ज़रूरी नहीं कि सिर्फ वही अर्थ कविता में हों। उनके अलावा भी कुछ अर्थ ऐसी कविताओं में होते हैं जो उनके भीतर, उनके शब्दों और वाक्यों के ताने-बाने में बिखरे-फैले हुए रहते हैं। हमें कैसे पता चलता है कि वे वहाँ भीतर या नीचे कहीं हैं? कहना न होगा कि कई बार यह आभास कविता के शब्दों और वाक्यों में नज़र आनेवाले ऊपरी अर्थों से ही मिलता है। कई बार, कविता के ऊपरी अर्थों और जो भावनात्मक असर पूरी कविता को पढ़ते हुए हमारे ऊपर होता है, उनमें फाँक पड़ जाती है। और यह भावनात्मक असर हमें उस ओर खींचने लगता है जिधर कविता के छुपे हुए अर्थ होते हैं। फिर, कई बार यह भी होता है कि कविता का कोई एक शब्द या कुछ शब्द हमारे ध्यान को अपने ऊपर अटका लेते हैं। और जब हम उन शब्दों पर मनन करने लगते हैं और शेष कविता को उनकी रोशनी में देखने लगते हैं, तो कविता के छुपे हुए अर्थ हमारे सामने खुलने लगते हैं।

चित्रः विष्णु चिंचालकर

इस कविता के पहले दो हिस्सों को पढ़ते हुए एक ऐसे व्यक्ति की तस्वीर हमारे सामने उभरती है जिसने अत्यन्त गरीबी में अपना जीवन जिया है, और वह दूसरों से लिए उधार के बोझ के नीचे दबा हुआ है। इसलिए अपनी गरीबी और उधार के इस एहसास के अलावा वह कुछ सोच ही नहीं पाता। यहाँ तक कि उसे लगता है कि उसका शरीर तक उसका अपना नहीं; वह दूसरों के यहाँ गिरवी है, उनका ही है।

परन्तु कविता की अन्तिम पंक्तियों को पढ़ते ही, और खासकर "धार" शब्द पर ध्यान टिकाते ही, हमें लगने लगता है कि मामला सिर्फ इतना ही नहीं है। यह व्यक्ति गरीब तो है और उसे अपने कर्ज़ के बोझ का एहसास भी है, परन्तु उसकी सोच इससे कहीं आगे जाती है। यानी यह व्यक्ति अपने ऊपर, अपनी हालत पर तरस नहीं खा रहा। वह इस हालत पर सोच रहा है और उसे पता है कि उसकी यह हालत क्यों है। उसकी इस हालत के लिए वे लोग ज़िम्मेदार हैं जो मालिक हैं और जिनके यहाँ उसका शरीर भी बन्धक है। ये वही लोग हैं जिनके पास पैसा है, पूँजी है, ज़मीन-जायदाद है और जो उसको, उसकी मेहनत-मजूरी को खरीद सकते हैं। और यह व्यक्ति इस स्थिति को बदलने का इच्छुक है। "धार" शब्द इसी इच्छा को इंगित करता है। परन्तु वह केवल इतना भर इंगित नहीं करता। वह यह भी इंगित करता है कि इस व्यक्ति और उस जैसे दूसरे लोगों के पास सोच का हथियार है, जो तेज़ है, प्रखर है, और जिसका इस स्थिति को बदलने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। हमें यहाँ अन्तिम पंक्ति के एक और शब्द "अपनी" पर भी ध्यान देना चाहिए। ऐसा लगता है कि इस शब्द का इस्तेमाल करते हुए यह व्यक्ति केवल अपने बारे में ही नहीं सोच रहा, बल्कि अपने जैसे दूसरे लोगों के बारे में भी सोच रहा है। यह शब्द उसे अपने जैसे उन दूसरों के साथ जोड़ देता है।

अन्त में यह कहना ज़रूरी है कि "धार" शब्द के बारे में ऐसा लग सकता है कि यह लोहे की धार या इस व्यक्ति के हुनर को इंगित कर रहा है, जिस हुनर का उपयोग करते हुए वह धार बनाता है। ऐसा सम्भव है। परन्तु मेरे विचार में इससे भी ज़्यादा यह धार सोच की धार है, जो असहनीय स्थितियों को काटकर, उनमें चीरा लगाकर, उन्हें बदलने की कोशिश कर सकती है।

अपनी केवल धार

नरेश सक्सेना

अपना क्या है इस जीवन में जो भी लिया उधार।
सारा लोहा...अपनी केवल धार।

अरुण कमल की ये दो पंक्तियाँ सम्भवतः इधर की हिन्दी कविता की सबसे प्रसिद्ध पंक्तियों में से हैं। और शायद रहीम और कबीर के कुछ दोहों की तरह हमेशा प्रसिद्ध रहेंगी।

आखिर वो क्या चीज़ है जिसने इसे लाखों दिलों में उतार दिया! सबसे पहली चीज़ इसकी सहजता और संगीत है। बच्चों के तमाम खेलों, नर्सरी गीतों और लोरियों में प्रयुक्त लय तो है ही। उधार के साथ धार जैसी तुक की संगति भी है। हमारे पास जो भी है जैसे, जूते, कपड़े, बस्ता, कलम, कॉपी, क्या हमने बनाई?

"क्या कुर्सियाँ, मेज़ें, ब्लैकबोर्ड, डस्टर, चॉक, स्कूल की घण्टी या ये इमारत हमारे किसी शिक्षक या हैडमास्टर साब ने बनाई है?"

हम जानते हैं इन्हें मज़दूरों और कारीगरों ने बनाया। बदले में उन्हें उनके हक भर वाजिब मज़दूरी भी नहीं मिलती। उनके बच्चे अकसर जूते, मोजे और यूनीफॉर्म पहनकर तुम्हारे साथ स्कूलों में पढ़ नहीं पाते हैं। इसलिए कवि महसूस करता है कि इन सारी चीज़ों की उधारी उस पर चढ़ी है। कविता की अन्तिम पंक्ति पर कुछ आलोचक दबी ज़ुबान में कहते हैं कि धार को ऊपरी बताकर कवि ने जैसे सारा श्रेय खुद ले लिया। लेकिन धार जितनी ज़रूरी है लोहा उससे कम ज़रूरी है क्या? पहले लोहा है या कि पहले धार है?

हँसिया, फावड़ा, गेती, सुई मिट्टी से नहीं बन सकती। न लकड़ी से, न काँच से। लोहे को खदान से निकालने, भट्टियों में पिघलाने और सफाई करने में बहुत श्रम लगता है। हालाँकि इतने भर से क्या होगा? बिना आकार दिए और धार भरे वह बेकार होगा।

यहाँ कवि के पास धार की कला है। पर वह कहता है कि असली श्रम व श्रेय के हकदार तो वे हैं जिन्होंने लोहा उपलब्ध कराया। मैंने तो कम मेहनतवाला सिर्फ धार करने का काम किया। निश्चय ही यह श्रम के महत्व को प्रतिष्ठा देनेवाली कविता है।

कॉपी रंगोली

1

2

3

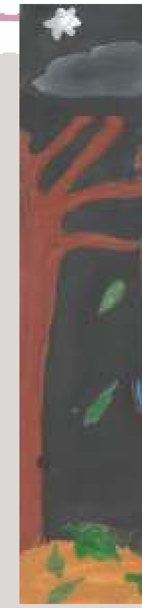

चुनिन्दा नौ चित्र

1. के एस, नवीन राजन, छठी, डीपीएस कोयम्बटूर 2. इकरा रहमान, पाँचवीं, डीपीएस, पटना 3. ओजस सिन्हा, नवीं, डीपीएस, पटना 4. मनीषा, पाँचवीं, सवाईमाधोपुर, राजस्थान 5. ईशान शर्मा, दसवीं, डीएवी, गुड़गाँव 6. अवन्तिका, आठवीं, कोयम्बटूर 7. एस, एन हारिनी, सातवीं, डीपीएस, कोयम्बटूर 8. एम वाई सूर्या, पाँचवीं, डीपीएस, कोयम्बटूर 9. नन्दन, ग्यारह वर्ष, आनन्द निकेतन, राष्ट्रीय बालभवन, दिल्ली

4

5

6

7

8

9

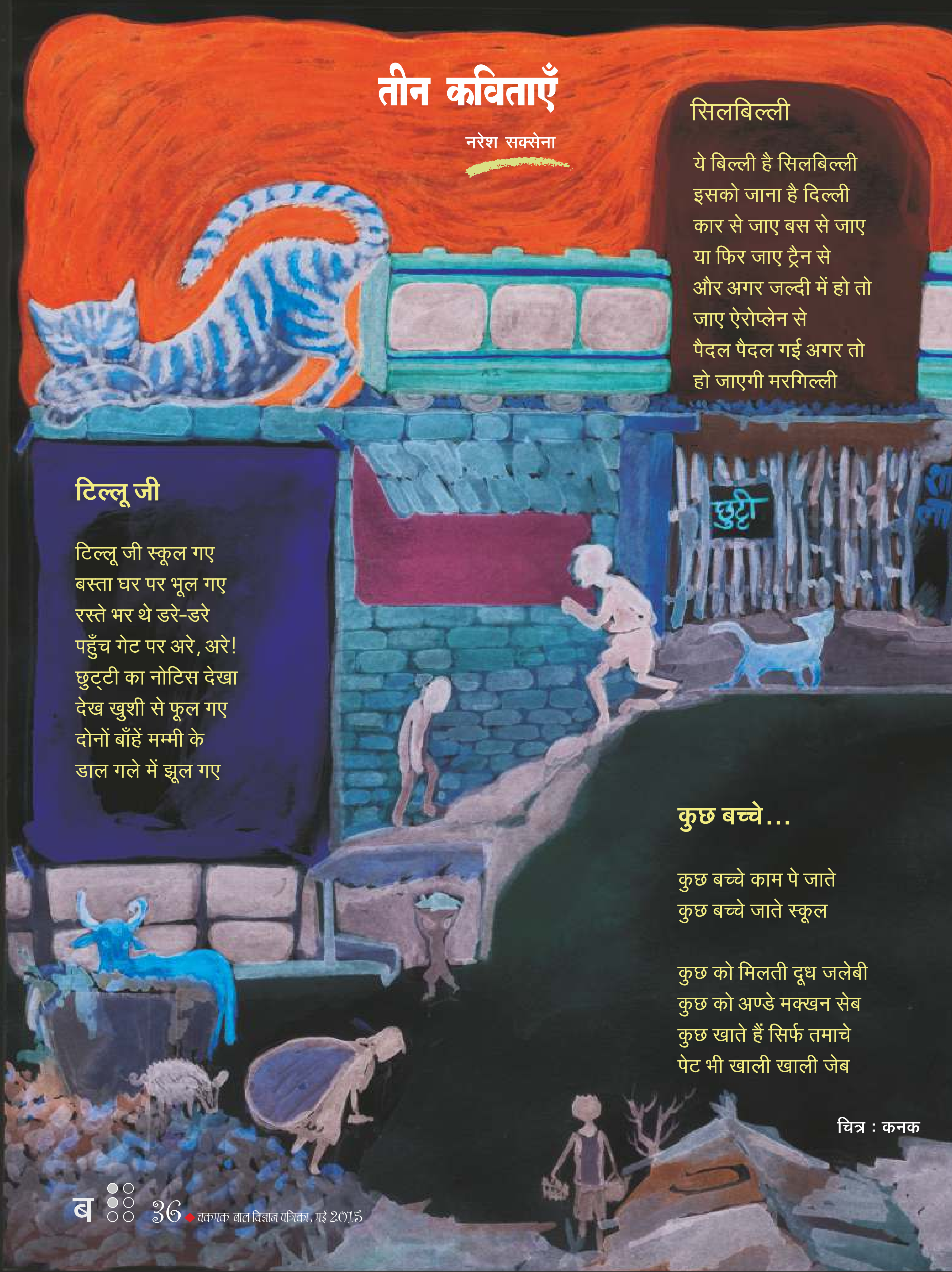

तीन कविताएँ

नरेश सक्सेना

सिलबिल्ली

ये बिल्ली है सिलबिल्ली
इसको जाना है दिल्ली
कार से जाए बस से जाए
या फिर जाए ट्रैन से
और अगर जल्दी में हो तो
जाए ऐरोप्लेन से
पैदल पैदल गई अगर तो
हो जाएगी मरगिल्ली

टिल्लू जी

टिल्लू जी स्कूल गए
बस्ता घर पर भूल गए
रस्ते भर थे डरे-डरे
पहुँच गेट पर अरे, अरे!
छुट्टी का नोटिस देखा
देख खुशी से फूल गए
दोनों बाँहें मम्मी के
डाल गले में झूल गए

कुछ बच्चे...

कुछ बच्चे काम पे जाते
कुछ बच्चे जाते स्कूल

कुछ को मिलती दूध जलेबी
कुछ को अण्डे मक्खन सेब
कुछ खाते हैं सिर्फ तमाचे
पेट भी खाली खाली जेब

चित्र : कनक

पन्नी पाठशाला

प्यारे मित्रो,

मैं बहुत खुश हूँ। तुमने तो अपनी पहली पारी में ही 20-20 खेल खेल लिया। दे दनादन कार्टून! खुशी यह देखकर भी हुई कि अपनी पढ़ाई के साथ-साथ तुम अपने आसपास की घटनाओं और देश की राजनीति पर भी पैनी नज़र रखते हो। तभी तो तुममें से किसी ने भूमि अधिग्रहण पर, तो किसी ने पर्यावरण पर, किसी ने महँगाई पर कार्टून भेजे हैं। मगर कई बच्चों ने चीटिंग भी की है.... व्हाट्सअप पोल खोल देता है।

कोशिश करो जैसे भी कार्टून हों, खुद के सोचे हों। तुम्हारे सैंकड़ों कार्टून मिले... जैसे- किसलय किशोर का **बेमौसम बारिश** पर कार्टून। सच....! बिजूका पक्षी तो उड़ा सकता है मगर बारिश नहीं रोक सकता! पर्यावरण पर एक बहुत अच्छा कार्टून है जिसमें नदी में कई तरह का कचरा पड़ा है, जिससे मछलियाँ मर गई हैं और नदी के किनारे मछलियों को खाकर ज़िन्दा रहनेवाला मगर पत्थर खा रहा है। मछलियाँ तो खत्म अब मगर भी...बहुत शानदार।

तुम्हारी छुट्टियों का मज़ा किरकिरा करने आनेवाली गर्मी कितनी भयानक होती है... देखो! इसी तर्ज़ पर तुम्हारे दिमाग में भी आइडिए (खुद के) आएँगे। बस बनाकर भेज दो...

— किसलय किशोर, आठवीं, डी.पी.एस पटना

– गीतेश, पाँचवीं,
विश्वास विद्यालय, गुड़गाँव

– सुहानी डोगरा, सातवीं, डी.पी.एस पुणे

फनी पाठशाला

– राघव और
रुहिका कोहली,
छठी, डी.पी.एस पुणे

— ध्रुव गुप्ता,
छठी,
डी.पी.एस पुणे

— प्रतिक्षा पी., पाँचवीं,
डी.पी.एस कोयम्बतूर

— रुवालाल ठाकुर, आठवीं,
आधारशिला शिक्षण केन्द्र, साँकड़ (म.प्र)

— मनीषा गुर्जर, तेरह साल,
सवाईमाधोपुर, राजस्थान

कुएँ में जाके सोचो,

इन्द्राणी रॉय

पिछले हफ्ते पड़ोस की एक बच्ची की जन्मदिन पार्टी का न्यौता लेकर उसकी माँ आईं। मैंने उनसे पूछा, "बच्ची कितने साल की है?" उन्होंने जवाब दिया, "अब वह दूसरी कक्षा में है।" तो हम 7-8 साल की बच्ची के लिए तोहफा लेकर पार्टी में गए।

उसी पार्टी में आए शर्मा जी से मैंने पूछा, "डॉक्टर साब छुट्टी से वापस आ गए हैं क्या?" तो वे बोले, "मैंने उनकी गाड़ी बाहर खड़ी देखी थी।" मैंने कहा, "अच्छा।" और हम पार्टी से लौटते वक्त डॉक्टर साहब की क्लिनिक चले गए।

तुम शायद सोच रहे होगे कि मैं अपनी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी की बातें क्यों छेड़ रही हूँ। असल में मैं चाहती हूँ कि तुम इन रोज़मर्रा की बातों को थोड़ा ध्यान से देखो। मैंने अपने पड़ोसी से उनकी बच्ची की उम्र पूछी थी और उन्होंने उसकी कक्षा के बारे में बताया। फिर शर्मा जी से मैंने डॉक्टर साहब की गाड़ी के बारे में तो नहीं पूछा था। पर उन्होंने सीधा जवाब देने की बजाय डॉक्टर साहब की गाड़ी के बारे में बताया।

मुझे लगता है तुम्हें भी मेरी तरह ये बातें साधारण ही लगी होंगी। तुमने भी समझ लिया होगा कि कोई अगर दूसरी कक्षा में पढ़ रहा है तो वह सात-आठ साल का होगा। अगर किसी की गाड़ी घर के बाहर खड़ी दिख रही है तो सम्भावना है कि वह घर में होगा ही। भले ही दोनों बार मुझे सीधा-सीधा जवाब नहीं मिला हो कि भई बच्ची सात साल की है और डॉक्टर साहब छुट्टी से वापस आ गए हैं पर मुझे जो जानकारी चाहिए थी वो मिल ही गई।

बात बहुत गहरी है...

बातचीत की इस खासियत को सबसे पहले पहचाना था भाषा वैज्ञानिक Paul Grice ने। उन्होंने देखा कि जब हम आपस में बातें करते हैं तो मानकर चलते हैं कि बोलनेवाले और सुननेवाले एक-दूसरे से सहयोग करना चाहते हैं। इसलिए हम किसी की कही हुई बात से सही मतलब निकालने की कोशिश करते हैं।

मान लो तुम्हारी माँ किसी काम से बाहर जा रही हों और तुम उनसे पूछते हो कि तुम कब तक वापस आओगी। जिसके जवाब में वे कहती हैं कि तुम खाना खा लेना। तो तुम कैसे समझ लेते हो कि माँ को आने में देर हो जाएगी! क्योंकि तुम मानते हो कि माँ ने तुम्हारी बात सुनी है और वो समझ गई हैं कि तुम क्या पूछ रहे हो। भले ही उन्होंने इसका सीधा जवाब नहीं दिया पर उनके दिए जवाब को सुनकर तुम समझ लेते हो कि माँ वापस लौटने का ठीक वक्त अभी बता नहीं पा रही हैं। पर उन्हें लग रहा है कि उन्हें आने में देर हो सकती है, इसलिए वे चाहती हैं कि तुम उनका इन्तज़ार न करो, वरना तुम्हें खाना खाने में देर हो जाएगी।

चूँकि तुम मानते हो कि माँ तुम्हें सही सूचना देने की कोशिश कर रही हैं तुम उनकी बात का सही मतलब निकाल ही लेते हो। रोज़मर्रा की बातचीत में न कही गई बात कुछ इसी तरह से सुननेवालों को समझ में आ जाती है।

चित्रः शैलजा जैन चौगले

चित्र पहेली
बाएँ से दाएँ
ऊपर से नीचे

RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र./261/भोपाल/2015-17

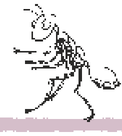

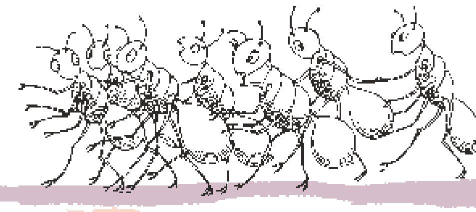

हमने पकाई है एक डायरी... तुम्हारे लिए!

आकर्षक चित्रों से सजे-धजे डेढ़ सौ पन्ने

इसका नाम है - दुबली चींटी सबसे आगे थी...

यह डायरी बहुत ही दोस्ताना स्वभाव की है। तुम्हारे पास आते ही तुमसे बातें करेगी...रोज़-रोज़ तुम्हारे ही पड़ोस की नई-नई चीज़ों से, लोगों से मिलवाएगी। तुम्हारे साथ चाँद-तारे निहारेगी। तुम्हें चित्र बनाने के लिए नए-नए विषय सुझाएगी। कई बातें होंगी जो तुम अब तक किसी को नहीं बताते होगे...तुम इस डायरी से साझा कर सकते हो।

आज
रात का आसमान रोज़
बदलता है।
कई तारे और ग्रह कभी
दिखते हैं, कभी नहीं।
कुछ तो अपनी जगहों
से ही सरक जाते हैं।
चाँद तो इस मामले में
बड़ा उस्ताद है।
कभी गोल-गोल,
कभी फाँक-फाँक।

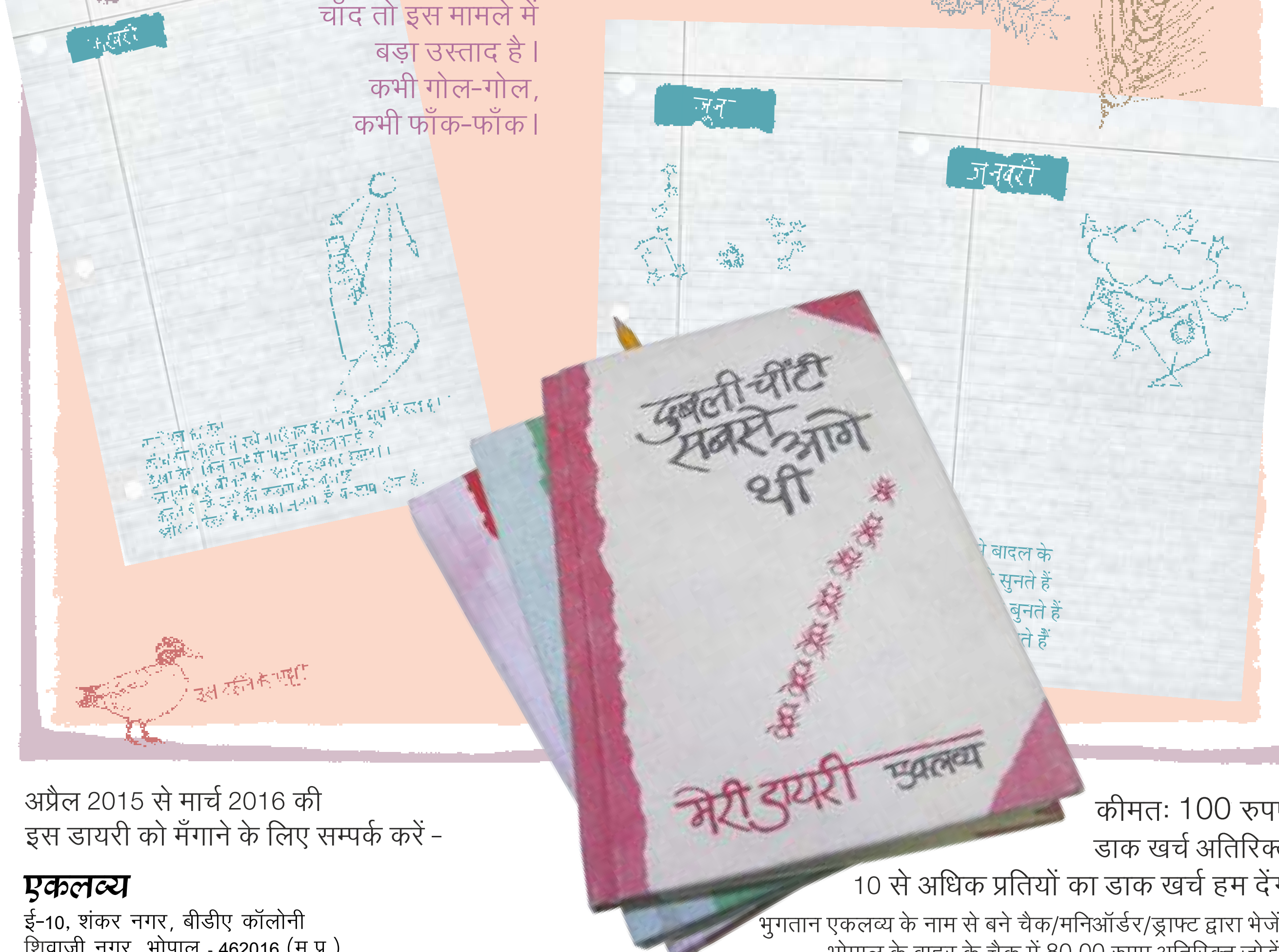

अप्रैल 2015 से मार्च 2016 की
इस डायरी को मँगाने के लिए सम्पर्क करें -

कीमत: 100 रुपए
डाक खर्च अतिरिक्त
10 से अधिक प्रतियों का डाक खर्च हम देंगे
भुगतान एकलव्य के नाम से बने चैक/मनिऑर्डर/ड्राफ्ट द्वारा भेजें।
भोपाल के बाहर के चैक में 80.00 रुपए अतिरिक्त जोड़ें।

एकलव्य
ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी
शिवाजी नगर, भोपाल - 462016 (म.प्र.)
फोन - 09425010115, 0755 - 2671017, 4252927
email - chakmak@eklavya.in, pitara@eklavya.in www.chakmak.eklavya.in www.eklavya.in

प्रकाशक एवं मुद्रक अरविन्द सरदाना द्वारा स्वामी रैक्स डी रोज़ारियो के लिए एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, 61/2 बस स्टॉप के पास, भोपाल 462016, म.प्र. से प्रकाशित एवं आर. के. सिक्युप्रिन्ट प्रा. लि. प्लॉट नम्बर 15-बी, गोविन्दपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल - 462021 (फोन: 0755 - 2687589) से मुद्रित।
सम्पादक: सुशील शुक्ल